॥ ओ३म ॥

भवानीशंकरौ जयतः

अमर कथा

प्रथम खंड

लवपुरीयप्राच्य विश्वविद्यालयाधीत विद्येनइन्द्रप्रस्थमण्डला-
न्तर्वर्ति नरेला वास्तव्य भक्तिमार्ग, द्विजकर्तव्य, ओङ्कार
व्याख्या, गायत्र्यर्थ प्रकाशिका आदि अनेक
ग्रन्थ लेखक हिज़ होलीनेस परमहंस पूज्य
१०८ स्वामीपरमानंद शिष्येण ब्रह्मनिष्ठ
श्रीरघुनाथस्वामिना प्रणीता ।

सा च

पालम निवासी श्रीमान् पण्डित रामचन्द्रजी शर्मा बी.ए.
रिटायर्ड असिस्टेन्ट औडिट औफिसर महोदय ने
स्वपूज्य पितृदेव पं० माधोसिंहजी के स्मरणार्थं
निज व्यय से छपा कर प्रकाशित की ।

अस्य सर्वेऽधिकारा ग्रन्थकर्तुरेव ।

मूल्य १)

गयादत्त शर्मा के प्रबन्ध से गयादत्त प्रेस, बागदिवार देहली में छपी ।

रामस्वरूप ब्रह्मचारी

धन्यवाद पत्रम्

धर्म्मेतत्परतां मुखे मधुरतां, शास्त्रेऽति विज्ञानिताम् ।
मित्रेऽवंचकतां गुणे रसिकतां विभ्रद्धदान्यो वशी ॥
धैर्य्ये धीरजनाश्रयः करुणया स्वच्छाम्बुवन्निर्मलः ।
श्रीमान् पंडित रामचन्द्र विजयी, वर्वर्ति सर्वोपरि ॥

जो बड़े धर्मात्मा और जो बड़ा मीठा बोलने वाले तथा विद्वान् और गुणवान् हैं। मित्रों के रक्षक, धीरज का मानो आश्रय हैं, जो निर्मल जल के समान कोमल चित्त हैं, ऐसे श्रीमान् पं० रामचन्द्र जी सर्वोपरि विराजमान् हैं आपको भगवान् चिरायु दें।

भवदीयः रघुनाथ स्वामी।

भूमिका

सत्यमेव जयते नानृतम् ।

अनादि सत्य सनातन प्रेमियो !

लीजिये, यह आपका सर्वस्व धन वेद अमृतरूपा अमर कथा। सद्गुरु १०८ श्री परमानन्द की पूर्ण कृपा से ३१ वर्ष पूर्व प्राप्त। यमुना नदी से एक योजन पर वे प्राचीन वन में महर्षि बोले, लो चारों वेदों के सार रूप ये १०८ अष्टोत्तरशत मंत्र ही शिव माला है। यह वेद वाणी शिव सती संवाद है। महर्षि पतंजल ने कहा है– "अग्री वस्तं प्रत्यमुञ्चत" बेसिर का इस माला को पहन सक्ता है।

इह चेदवेदीदथसत्यमस्ति नचेदिहा वेदीन्महतिविनष्टि । केन

यदि इसी मनुष्य जन्म में परमात्मा जाना गया तो अमृत है और यदि यहां न जाना गया तो बड़ी हानि है।

मनुज देह प्राप्त भयो सब प्रापत का मूल ।
तामें हरि प्रापत नहीं सब प्रापत पै धूल ॥

पार होना हो तो हो लो अखिरी बेड़ा है।

ॐ हर विष्णुः ममाऽत्मनः श्रुति स्मृति पुराणोक्त फल प्राप्त्यर्थं धर्मार्थ काम मोक्ष सिद्धि द्वारा सर्व व्याधि निरासन पूर्वकं सर्वाभीष्ट सिद्ध्यर्थं श्री भवानीशंकर देवता प्रीत्यर्थं श्री अमरकथा, अमुक द्रव्येण आरम्भ महं करिष्ये ।

ॐ नमोऽस्तु भूताय ज्योतिर्लिङ्गा मृतात्मने ।
चतुर्मूर्तिं वपुश्छाया भासिताङ्गाय शम्भवे ॥

भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थ मीश्वरम् ।
ध्यायेन्नित्यंमहेशं रजत गिरिनिभं चारु चन्द्रावतंसं ॥
रत्ना कल्पोज्वलांगं परशुमृगवरा भीति हस्तंप्रसन्नम् ।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणै र्व्याघ्रकृत्तिं वसानं ।
विश्वाद्यं विश्व बीजं निखिल भयहरं पंचवक्त्रं त्रिनेत्रम् ।

भगवान् शिव के शरीर की कान्ति चान्दी के पर्वत के समान उज्वल है, ललाट पर अर्द्ध चन्द्रमा शोभायमान् है, एवं रत्नराशी के समान निर्मल अंग है। दो हाथों में परशु व मृग चर्म धारण किए हुए हैं, एक हाथ में वर की मुद्रा है, और दूसरे में अभय की, श्री मुखारविन्द से प्रसन्नता टपक रही है, बाघम्बर पहने हुए हैं, कमल पर बैठे हुए हैं, पांच मुख हैं, प्रत्येक मुख में तीन २ आंखें हैं, सबका भय दूर करने के लिये उद्यत हैं, और यही विश्व के बीज मूल कारण हैं। देवतागण चारों ओर से स्तुति पाठ कर रहे हैं, ऐसे भगवान् शंकर का ध्यान करना चाहिये।

❀ शिव वन्दना ❀

बसे शिवा वामे अंग लसे भूत जूथ संग ।
ग्रसे भंग शीश गंग ज्ञान तिहु कालको ॥
धेनु वाल वाहन सुधाल बाल भाल धरे ।
गले व्याल मुण्डमाल तले सिंघ खाल को ॥
नाथन के नाथ हैं अनाथन के नाथ देव ।
जाके पाद पाथ माथ धरे हरे काल को ॥

दया सिन्धु अलकाम कामऋपु सुख धाम।
दास की नमामि होवे ऐसे हर व्याल को ॥

श्री हरिः

परमात्मा शिवः प्रोक्तः शिवा मायेति कथ्यते।
पुरुषः परमेशानः प्रकृतिः परमेश्वरी ॥ शि० पु०।

ईश्वर शिव है, शिवा माया है, पुरुष परमेश, प्रकृति परमेश्वरी है।

शिवः—शेते सर्व शरीरेषु इति शिवः।

जो सब शरीरों में सो रहा है वही शिव है।

या माः—या नास्ति किन्तु प्रतिभासते सा माया।

जो न हो किन्तु प्रतीत होवे वो माया है। यदि शक्तिमान् की सच्ची उपासना की जाय तो शक्ति अलग नहीं रह सक्ती। पुरुष से भिन्न प्रकृति नहीं, पुरुष की प्रकृति परमात्मा का स्वभाव, ब्रह्म की माया, शिव की शक्ति, ईश्वरभूत जीव, और जीवभूत ईश्वर की इच्छा।

ॐ साम्ब सदाशिवः

८४ लक्ष जीवन में मानव शरीर ही सब प्राप्तियों का सर्वोपरि सिद्धि साधन है यदि इस में भी हरि हर प्राप्ति न भई तो सब ही प्राप्ति निष्फल हैं अर्थात् सब प्राप्तियों पर धूल है। क्योंकि "भस्मान्तꣳशरीरम्" यह शरीर भस्म होगा।

गौरी उवाच—

माया जाल से लिपटे हुए नाना दुःखों से दुखित जीव संसार सागर में बिलबिला रहे हैं:—उनकी मुक्ति का उपाय हे शङ्कर! मेरे प्रति कथन कीजिये।

सर्वसिद्धिकरं मार्गं मायाजाल निकृन्तनम् ।
जन्म मृत्यु जरा व्याधि नाशनं सुखदं वद ॥

माया जाल से निकालने वाला सर्व सिद्धियों के देने वाला जन्म मृत्यु जरा व्याधि आदि सर्व के नाश करने वाला मार्ग मेरे प्रति कथन करें ।

सदा शिव उवाचः—

देहो देवालयः प्रोक्तः सजीवः केवलः शिवः ।
त्यजेदज्ञान निर्माल्यं सोऽहं भावेन पूजयेत् ॥

हे देवी ! यह देह मन्दिर अर्थात् देवालय है, जीव ही केवल शिव है अज्ञान रूपी जो अन्धेरा है उसको दूर करना ही निर्माल्य है, जब अन्धेरा गया और प्रकाश हुआ तो २१६२०अहर्निश श्वासों में मुझ शिव स्वरूप को सोऽहं भाव से भज, पूजन कर और भव बन्धन हर ।

इस महल में अपना प्यारा है जिसकी स्वरूपता पोड़श वर्ष के कुमारों में इतस्ततः प्रतीत होती है परन्तु तुम अपने प्यारे को इन नेत्रों से जभी देख सकते हो जब इन चार शत्रुओं को नितान्त छोड़ दो । काम, क्रोध, लोभ और मोह, ये ही जीव को जन्म मरण रूपी दुःख देने वाले जान ।

जैसे धूम से आग, शीशा मल से, जेर से गर्भ ढका है ऐसे ही काम से आत्मा आवर्त ढका है ।

सदाशिव उवाच—

हे देवी यह विषय अत्यन्त गोपनीय है अनधिकारी जनों को देने योग्य नहीं है । जो मेरा अनन्य प्रेमी भक्त हो उसको देना, जो

गुरु भक्त हो, श्रद्धालु हो, विश्वासी हो। परन्तु ऐसे विरले हैं। हे सतिः—

इदं तीर्थमिदं तीर्थं भ्रामन्ते तामसा जनाः।
आत्म तीर्थं न जानन्ति कथं मोक्ष वरानने ॥

यहां तीर्थ वहां तीर्थ ऐसे तमोगुणी भ्रमते हैं। हे देवी! आत्मा रूपी सच्चे तीर्थ को नही जानते उनकी कैसे मोक्ष हो सकती है।

हे सति जी! वेद भगवान् मेरा शरीर है, तुही वेद वाणी मंत्र रूप है।

यथा—मन्त्राणां मातृका देवी।

यही उपनिषद् महा वाक्यादि मंत्र मणिका या अमर फल नाम १०८ वेदमंत्र रूप से हैं।

सद्गुरु वन्दनम्

श्री गुरुं परमानन्दं वन्दे स्वानन्द विग्रहम्।
यस्य सान्निध्य मात्रेण चिदानन्दाय ते तनुः ॥
वन्दे श्री गुरु परमानन्दम् ॥१॥
विश्व विमोहन परमानन्दम् ॥२॥
विश्व भरण शिव परमानन्दम् ॥३॥
आशुतोष गुरु परमानन्दम् ॥४॥
नमो नमो श्री परमानन्दम् ॥५॥

गुरु देव साक्षात् भगवान् हैं, जो उनको मनुष्य जानता है उसका सब श्रवण हाथी के स्नान के तुल्य है क्योंकि हाथी स्नान के बाद फिर अपने ऊपर धूल डाल लेता है पुनः वैसा ही हो जाता है।

ध्यान मूलं गुरो मूर्तिः पूजा मूलं गुरोः पदम् ।
मंत्र मूलं गुरोर्वाक्यं मोक्ष मूलं गुरोः कृपा ॥

जगद्वन्दनीया पतिव्रत योगिनी मातेश्वरी श्री सती जी का एक यही नियम था, कि मैं एक शङ्कर को ही वरूंगी जैसा कि कहा है-

जन्म २ यही रगड़ हमारी । वरूं शम्भु नतो रहूं कुवाँरी ॥

सब देवों के प्रलोभन देनेपर भी अपना अटल पतिव्रत नियम नहीं तोड़ा अतः पूर्व में भवानी शंकरौ वन्दे आया है, शङ्कर भवानी ऐसा नहीं ।

एक समय देवाधिदेव महादेव शिवशंकर कैलाश में वाघम्बर पर विराजमान आनन्द में मग्न थे । तब सती ने प्रश्न किया हे प्राणनाथ जिस 'अमरकथा' के श्रवण करने से सर्व जीवों का उद्धार होवे, सो कृपया कथन कीजिये ।

तब दया सागर बोले, 'हे वरानने ! एकाग्रता से सुनो' यह सच्चिदानन्द स्मरणी माला रूप, १०८ मुण्ड रूप मणिके वा वेद मंत्र हैं इनको एकाग्रता से सुनो ।

सती ध्यानावस्थित हो कथा में मग्न होगई तदनन्तर गाढ निद्रा छागई, समीप ही एक शुक अण्ड था वह भेद को प्राप्त हुआ और हूँहां करने लगा और मुक्त होगया इत्यादि शुक के बारे में जानना ।

जो इन मंत्रों को पूर्ण श्रद्धा विश्वास से जपेगा या श्रवण मनन निदिध्यासन करेगा वह इसी शरीर में जीवनमुक्त होगा ।

ओम् शम्

निवेदकः-रघुनाथ स्वामी
श्री रामकृष्ण स्वामी पुस्तकालय
नरेला, सूबा देहली ।

॥ ॐ नमः शिवाय ॥

अमर कथा

प्रथम मणिका

ओ३म् योभूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

(यो) जो परमेश्वर (भूतं) अतीत काल जो व्यतीत हो गया है (च) और अनेक चकारों से जो वर्तमान काल है (भव्यं) और तीसरा भविष्यत् अर्थात् होने वाला काल है उन सब को और उनके व्यवहारों को यथावत् जानता है (यः) जो परमेश्वर (सर्वं) सब को (अधितिष्ठति) अध्यारोप से अध्यस्त कल्पना कर सर्व के अधिष्ठान रूप से अर्थात् अधिष्ठाता रूप से स्वामी है (च) और (यस्य) जिसका (स्व) सुख ही (केवलं) केवल स्वरूप है (तस्मै) उस अपार सुख स्वरूप अपने आपे (ज्येष्ठाय) सब से बड़े महादेव (ब्रह्मणे) पर ब्रह्मानन्द स्वरूपके लिये (नमः) हमारा नमस्कार हो।

इस मन्त्र में भूत भविष्यत् वर्तमान आदि अवयवों से युक्त काल पुरुष का पूर्व वर्णन करते हुए परमेश्वर की महती महिमा से महान् शुद्ध ब्रह्म की भक्ति और प्रेम से आत्मसमर्पण नमस्कारों द्वारा पूजा विधान की है, मनुष्य को प्रथम काल का ज्ञान अत्यन्त आवश्यकीय है जैसा कि अथर्व वेद में लिखा है—

काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम्
काले न सर्वा नन्दन्ति आगतेन प्रजा इमा ।

काल ही में मनुष्य को ज्ञान होता है अथवा मन क्रिया करता है काल ही में पुरुष का प्राण अर्थात् जीवन पवित्र होता है और काल ही में पुरुष की कीर्ति अर्थात् नाम का यश अटल होता है जिस प्रकार राम का। आई हुई प्रजा काल ही का आदर कर किन्तु समय को व्यर्थ कार्यों में न गवाँ कर समय की सार जानकर अनन्य भक्ति द्वारा परमानन्द मोक्ष को प्राप्त होती है जैसा कि वेद में परमेश्वर उपदेश देते हैं—

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिःसहस्राक्षो अजरो भूरि रेताः ।
तमारोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा॥

अथर्व० १९ । ६ । ५५ । १

काल रूपी घोड़ा जिस की सप्तरश्मि हैं सहस्रों नेत्र हैं जो कभी बूढ़ा नहीं होता जिस की शक्ति बहुत बड़ी है वह सब को उठाये लिये जाता है ज्ञानी विद्वान उस पर सवार होते हैं अर्थात् काल को जीत लेते हैं उस के रथ के पहिये सारे भुवन हैं और भी वेद भगवान कहता है—

सप्त चक्रान् वहति कालएष सप्तास्यनाभीरमृतं न्वक्षः ।
सइमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालःसईयते प्रथमो नुदेवः ॥

अथर्व०

(सप्त चक्रान) यह सात चक्रों को अर्थात् सप्त दिवसों को (वहति) उठाये हुए है (सप्त) सात (अस्य) इसकी (नाभि) नाभि हैं (अमृतं) अमृत अमर (नु) निश्चय करके (अक्ष) व्यापक नेत्र हैं जो सर्व के पाप पुण्य देखता है (स) वह (इमा) इन (विश्वा)

सारे (भुवनानि) भुवनों को (अञ्जत) व्यक्त करता हुआ (प्रथमः) पहला (देवः) देव (स) वह (कालः) काल (ईयते) चला जा रहा है पकड़ो, समय को व्यर्थ न जानेदो, करले सो काम भजले सो राम, फिर पीछे पछतायगा प्राण जांयगे छूट, श्वांस २ में जात है तिरलोकी का मूल, इन वचनों के अनुसार काल बहुत अमूल्य है क्योंकि:—

काले भूमीमसृजत् काले तपति सूर्यः
कालेह विश्वा भूतानि काले चक्षु विंपश्यति । अथर्व०

काल ने रचना रची है काल में सूर्य तपता है काल में सब भूत हैं, काल में नेत्र देखता है ।

सर्वान् लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः
सईयते परमोनुदेवः । अथर्व०

समस्त लोकों को ब्रह्म के द्वारा जीत कर वह परम देव काल चला जा रहा है पकड़ो, समय को व्यर्थ न जाने दो, नहीं तो नर्कों में महान दुःख उठाना पड़ेगा, और पछताना ही शेष रह जायगा । दृष्टान्तः—एक दरिद्री पारसमणि को गवांकर पछताता रहा, एक ग्राम में क्षुधातुर एक दरिद्री पुरुष इतस्ततः भ्रमण करता था कि एक महात्मा मिले और उन्होंने कहा बच्चा यह पारसमणि है इसको ग्रहण कर जितने लोहे से इसको लगा देगा तब सर्व ही सुवर्ण हो कर तुम्हारे दुःख को उच्छेद कर यथेच्छ धन प्राप्त होजावेगा परन्तु यह सब कार्य एक पक्ष के भीतर ही कर लेना पंचदश दिन के अन्त में सूर्यास्त समय में आकर यह लेलूंगा यह लेजा । वह पुरुष अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने गृह में आकर लगा सोचने और

देखने तो खुरपी तवा फूटी कढ़ाई आदि अनुमानिक तीन चार सेर लोहा विदित कर पण्य वीथिका अर्थात् बाजार को चल दिया देखें तो सही लोहे का क्या भाव है, देखा विदित हुआ बड़ा मंहगा है दुर्भाग्य से यह विचार उत्पन्न हुआ कि अब तो गृह के लोहे को बेचकर जो कुछ रुपये पैसे हों उनसे सस्ता लोहा हो तब खरीदना चाहिये यह विचार घर के लोहे को भी बेच दिया और लगा समय की प्रतीक्षा करने कि कब सस्ता लोहा हो और पारसमणि से लगाकर धनाढ्य होऊं अभी दिन तो कितने ही शेष हैं अब सस्ता होवे अब सस्ता होवे परन्तु वह तो मंहगा ही होता गया, अन्तिम समय आगया महात्मा ने आकर हाथ पकड़ लिया लाओ हमारी पारसमणि फिर क्या था ऊपर के श्वांस ऊपर नीचे के नीचे, काटो तो रक्त का पता नहीं, अन्तिम हाय एक घड़ी को भी देदो एक सुई से तो लगा लूं आवाज़ आई नहीं, नहीं, दरिद्र विकराल काल ने आकर दो मुद्गर लगा कर प्राणों को गवांकर परमेश्वररूपी सुख से वंचित कर दिया, यही दशा हम लोगों की है कि अमूल्य मनुष्य रूपी जन्म को प्राप्त हो काल की सार न जान अपने पूर्वार्जित शुभ कर्मों को भी गवांकर संसार रूपी बाज़ार में बेचकर मनुष्य रूपी जन्म के समय को ईश्वरार्पण परोपकार में न लगा कर दुःख रूपी कारागार सदैव के लिये बन्धन को प्राप्त हो जाते हैं, इस लिये वाद विवाद को छोड़ ईश्वर भक्ति करो फल खाओ, यह न पूछो कि वृक्ष कब लगा और किसका है नहीं तो समय व्यर्थ चला जायगा और भूखे के भूखे रह जाओगे जैसा कि एक दिन दो पथिक (यात्री) चन्द्रपुर को जा रहे थे जहां परम सुख और उत्तर में अमर फलों का बारा विश्वेश्वर महादेव का मन्दिर इत्यादि आनन्दों से

और महात्मा सज्जन जनों से परिपूरित ऐसे परम पवित्र वैकुंठ रूपी परमेश्वर के परम धाम को जा रहे थे कि मध्य में क्षुधा ने अत्यन्त व्यथित कर दिये तब घबराने लगे कि हाय अब भोजन मिले, मार्ग समाप्त हो, इतने में एक महात्मा बोले कि जाओ समीप ही यह वाटिका है एक प्रहर के भीतर माली से मिलकर फल खा लेना और कोई बात न करना महात्मा के निर्देशित आराम में प्रविष्ट हुए उन में एक तो आजकल की नई रोशनी वाला मन्तक़ी था और दूसरा बिचारा भोला भाला विश्वासी था वह तो जाते ही फल खाने लगा दूसरा पूछने लगा कि यह बाग़ किसका है क्यों लगाया है क्या पैदावारी है यह वृक्ष कितने दिन से लगाया है यह किसका है, इत्यादि बखेड़े में फंस गया और समय उसका चला गया इतने ही में बाग़ का मालिक आ गया दोनों को धक्का दे बाहर किया, जो फल खा कर तृप्त था वह तो अपने अभीष्ट स्थान को प्राप्त हुआ दूसरे साहिब बीच में ही बिलबिला कर मर गए। यही दशा सुखाभिलषित पुरुषों की संसार रूपी बाग़ में होती है जो सीधे सादे हैं वह तो गुरु के कथनानुसार शरीर रूपी बाग़ में आकर शब्द रूपी माली से मिलकर परमानन्द के भागी होते हैं और दूसरे जो यह कहते हैं कि संसार कहां से और किस लिये ईश्वर को क्या प्रयोजन था यह धर्म सत्य है या असत्य परमेश्वर है या नहीं इत्यादि भ्रम जाल में फंसकर गुरु के वचन पर दृढ़ विश्वास न कर समय को वृथा तर्क दलीलों में गवां कर घोर नर्क में पतन होते हैं, इस लिये परम पिता अनन्त दयालु ने वेद में उपदेश दिया है कि काल को वृथा मत गवांओ परमेश्वर त्रिकालातीत है कणाद महर्षि ने वैशेषिक दर्शन में काल का यह लक्षण किया है—

अपरस्मिन्नपरं युगपच्चिरं क्षिप्रमितिकाल लिंगानि ॥

जिस में पर अपर युगपत एक वार चिरंविलम्ब क्षिप्रं शीघ्र इत्यादि प्रयोग होते हैं उसको काल कहते हैं।

नित्येष्वभावादनित्येषुभावात् कारणे कालाख्येति

जो नित्य पदार्थों में न हो और अनित्यों में न हो इस लिये कारण में ही काल संज्ञा है। वैशेषिक अ० २

यह मोक्ष के समय ही लय हो जाता है, परमेश्वर काल का अधिष्ठान है जैसे किरणों का सूर्य और लहरों का समुद्र है जिसका अनन्त अपार सुख ही स्वरूप है उस सब से बड़े परमेश्वर को हमारा वार वार नमस्कार हो ॥

(२)

यस्य भूमि प्रमान्तरिक्ष मुतोदरं दिवं यश्चक्रे मूर्द्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

भाष्य—(यस्य) जिसकी (भूमि) पृथिवी (प्रमा) यथार्थ ज्ञान का साधन पाद की तरह (अन्तरिक्षं) आकाश जिसके (उदरं) उदर तुल्य है (दिवं) दिव तथा प्रकाश करने वाले पदार्थों को अर्थात् जिसने द्युलोक को मस्तक तुल्य (यः) जो (मूर्द्धानं) मस्तक तुल्य (चक्रे) किया है (तस्मै) उस (ज्येष्ठाय) ज्येष्ठ (ब्रह्मणे) ब्रह्म के लिये (नमः) नमस्कार हो ॥

व्याख्या—जिस परमेश्वर के होने और ज्ञान में भूमि जो पृथिव्यादि पदार्थ हैं सो प्रमा अर्थात् यथार्थ ज्ञान की सिद्धि होने का दृष्टान्त हैं जिस ने सृष्टि में पृथिवी को पाद स्थानी रचा है। अन्तरिक्ष अर्थात् सूर्य पृथिवी के मध्य में आकाश है उसको जिस

ने उदरस्थानी किया है प्रकाश करने वाले द्युलोक को सब के ऊपर मस्तक स्थानी किया है जो पृथिवी से ले के सूर्य लोक पर्यन्त सब जगत् को रचके उस में व्यापक होके जगत के सब अवयवों में पूर्ण होकर सब को धारण कर रहा है। उस परब्रह्म को हमारा अत्यन्त नमस्कार हो।

(३)

यस्य सूर्यश्चक्षुः चन्द्रमाश्च पुनर्णवः अग्निं यश्चक्रास्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

अर्थ—(यस्य) जिसने (सूर्यः) सूर्य (च) और चन्द्रमा को (चक्षुः) नेत्र स्थानी किया है (च) और (पुनः) पुनः कल्प कल्प के आदि में (णवः) नवीन नूतन बनाता है (अग्नि) अग्नि को (यः) जो वा जिसने (आस्यं) मुख स्थानि (चक्रे) किया है (तस्मै) उस (ज्येष्ठाय) बड़े (ब्रह्मणे) ब्रह्म के लिये (नमः) हमारा नमस्कार हो ॥

व्याख्या—जिस परमेश्वर ने नेत्र स्थानी सूर्य और चन्द्रमाओं को किया है जो कल्प के आदि में सूर्य चन्द्रमा आदि सर्व लोकों को वारंवार नये २ रचता है और जिसने मुख स्थानी अग्नि को उत्पन्न किया है, अर्थात् सूर्य के ऊर्ध्व भाग में जो प्रकाश है कि जिस प्रकार सूर्य चमकता है वह परमेश्वर का मस्तक है। सूर्य चन्द्रमा जिसके नेत्र हैं, आकाश जिसका उदर, और मुख, जिसका अग्नि है, उस अनन्त ब्रह्म के लिये हमारा नमस्कार हो ॥

(४)

यस्य वातः प्राणापानौ चक्षु रङ्गिरसो भवन् दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानि स्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणेनमः ॥

भाष्य—(यस्य) जिसने वा जिसका (वातः) ब्रह्माण्ड के वायु को (प्राणापानौ) प्राण और अपान की न्याईं किया है (चक्षुरङ्गिरसः) जो प्रकाश करने वाली किरणें हैं वे चक्षु की नाईं (अभवन्) की हैं अर्थात् उन से रूप ग्रहण होता है (दिशो) दिशाओं को (यः) जिस ने (प्रज्ञानि) प्रज्ञापिनि व्यवहारों को सिद्ध करने वाली बनाई हैं (तस्मै) उस (ज्येष्ठाय) अनन्त ब्रह्म के लिये (ब्रह्मणे) ब्रह्म को (नमः) नमस्कार हो ॥

व्याख्या—उपमन्यु के पुत्र प्राचीन शाल, पुलुष के पुत्र सत्य यज्ञ, भाल्लवी के पुत्र इन्द्रद्युम्न, शर्कराक्ष के पुत्र जन, आश्वतराश्वि के पुत्र बुडिल, यह पांचों श्रोत्रिय वेदवेत्ता एकत्रित होकर विचार करने लगे कि हमारा आत्मा क्या है और ब्रह्म क्या है उन्हों ने निश्चय किया यह जो आरुणि उद्दालक है यह आत्मा को जानता होगा इन्हीं को गुरु धारण करें, यह विचार उद्दालक के समीप आये वह प्रसिद्ध उद्दालक उनको आया देख विचारने लगा कि यह बड़े गृहस्त ब्रह्मवेत्ता मुझ से पूछेंगे हम उनको उत्तर देने में समर्थ नहीं इस लिये उद्दालक बोले हे पूजनीय देवो ! कईकेय के पुत्र अश्वपति निश्चय करके सम्प्रति इस समय में वैश्वानर ब्रह्म को वे भले प्रकार जानते हैं चलो उन्हीं को गुरु धारण करें, इस प्रकार विचार कर सब उनके समीप स्थित हुए राजा ने उनकी पूजा कराई, वह प्रसिद्ध राजा प्रातःकाल उठते ही उन के समीप जा कर बोले कि—

नमेस्तेनो जनपदे नकदर्य्यो न मद्यपो ।
नानाहिताग्नि र्ना विद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः ॥

(मे) मेरे (जनपदे) देश में (नस्तेनः) न चोर है (न कदर्यः) न कृपण हैं (न मद्यपः) न मद्य पीने वाला (न अनाहिताग्नि) न अग्नि-

होत्रादि यज्ञ न करने वाला (न अविद्वान्) न मूर्ख अपठित (न स्वैरी) न कोई व्यभिचारी है। और जब व्यभिचारी ही नहीं तो (कुतः स्वैरिणी) व्यभिचारिणी स्त्रियां कैसे हो सकती हैं। सो आप कुछ धन ऐश्वर्य मांगें मैं दूंगा आप मेरे यहां निवास करें तब ऋषि बोले हम जिस अर्थ के लिये आये हैं वह अर्थ आप हम लोगों को वैश्वानर आत्मा का उपदेश करें यही हमारी प्रार्थना है तब राजा ने पूछा हे 'औपमन्यव' तू किस आत्मा की उपासना करता है।

उसने कहा द्युलोक की उपासना करता हूं राजा बोले निश्चय करके यह उत्तम तेजोराशि वैश्वानर आत्मा है जिस को तं उपासता है इस लिये तू सुत प्रसुत आसुत यह तीनों प्रकार के सोमरस तेरे कुल में दीखते हैं। आप अन्न खाते और प्रिय देखते हो उसके कुल में ब्रह्म तेज होता है जो इस प्रकार से इस आत्मा वैश्वानर को उपासता है, परन्तु राजा बोला कि तू मेरे पास न आता तो तेरा शिर गिर जाता, अर्थात् बिना गुरु के उपासना खिन्न भिन्न और अधूरी होती है। इसी प्रकार सत्य यज्ञ से पूछा उसने कहा भगवन् मैं आदित्यात्मा की उपासना करता हूं, तो महाराज बोले कि यह वैश्वानर आत्मा की चक्षु है। इस लिये तेरे कुल में रूप की विशेषता है मेरे पास न आते तो तुम्हारी चक्षु गिर जाती, इन्द्रद्युम्न से पूछा कि हे वैयाघ्रपद्य ! आप किस लक्षण विशिष्ट ब्रह्म की उपासना करते हो वह बोला भगवन् वायु की, इसी प्रकार जन सारकराक्ष से कहा उसने कहा भगवन् मैं आकाश की उपासना करता हूं फिर बुडिल से पूछा उसने कहा कि हे राजन् ! मैं जल की ही उपासना करता हूं गौतम गोत्रोत्पन्न आरुणी के पुत्र उद्दालक से बोले क्या आप किस लक्षण विशिष्ट आत्मा

की उपासना करते हैं उसने कहा भगवन् पृथ्वी की। राजा ने कहा यह उसकी प्रतिष्ठा है, तुम भिन्न २ रूप से वैश्वानर आत्मा को जानते हुए अन्न खाते हुए अन्न खाते हो परन्तु जो ब्रह्म को उक्त प्रकार से प्रादेश मात्र सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रत्यक्ष जानने वाला व्याप्त ब्रह्मको उपासता है वह सब लोगों में सब भूतों में सब आत्माओं में अन्न खाता है आनन्द भोगता है इस आत्मा का तेजो राशि द्युलोक ही मूर्द्धा, सूर्य चक्षु, वायु प्राण, समान आकाश, धड़ समान, बस्ति ही जल, पृथिवी ही पाद वक्षस्थल यज्ञ वेदी समान लोम ही यज्ञ कुश की समान, हृदय गार्हपत्य अग्नि की समान दक्षिणाग्नि की समान मन, आहवनीय अग्नि मुख समान है पहले आहुति की यह विधि है:—

'प्राणाय स्वाहा'

इति यह बोल कर मुख में ग्रास अग्नि में आहुति देवे इस से प्राण तृप्त होते हैं प्राण के तृप्त होने से चक्षु तृप्त होता है और चक्षुओं के तृप्त होने से आदित्य तृप्त होता है और आदित्य के तृप्त होने से द्युलोक तृप्त होता है, द्युलोक के तृप्त होनेसे जो कुछ द्युलोक और आदित्य के आश्रित है वह सब तृप्त होता है, इन सबकी तृप्ति के पश्चात् प्रजा पशु अन्न तेज और ब्रह्म तेज से यजमान तृप्त होता है। तदनन्तर द्वितीयाहुति का हवन करे उसको—

'व्यानाय स्वाहा'

पढ़ कर आहूति देवे इस से व्यान तृप्त होता है इसका सम्बन्ध श्रोत्रिय इन्द्रिय से है, व्यान के तृप्त होने से श्रोत्र तृप्त होता है श्रोत्र के तृप्त होने से चन्द्रमा तृप्त होता है चन्द्रमा के तृप्त होने से दिशायें तृप्त होती हैं और दिशाओं के तृप्त होने से जो कुछ

दिशा और चन्द्रमा के अधिकार में है वह सब तृप्त होता है उस सब की तृप्ति के अनन्तर से यजमान प्रजा पशु ऐश्वर्य तेज और ब्रह्मतेज से तृप्त होता है।

(चदि आल्हादे) धातु से चन्द्रमा बना है उसी से चांदपुर जिस के अर्थ आनन्द दाता के हैं आनन्द दाता से जो परिपूर्ण है वही पुर है पुर नाम शरीर का है आनन्द देने वाला आत्मा है इसी को चन्द्रपुर यह यमुना नदी से उत्तर की ओर अर्थात् वाई चूची के नीचे पुण्डरीक आम्रतुल्य नीचे लटकता है इसी में चन्द्रपुर अर्थात् चांदपुर संघटित होता है इस के अनन्तर तीसरी आहुति अर्थात् तीसरा ग्रास इस मंत्र को पढ़ कर देवे—

'अपानाय स्वाहा'

इस प्रकार पढ़ कर हवन करे। इस आहुति से अपान की तृप्ति होती है अपान के तृप्त होने से वाणी की तृप्ति होती है वाणी के होने से अग्नि तृप्त होता है अग्नि के तृप्त होने से पृथिवी तृप्त होती है पृथिवी के तृप्त होने से जो कुछ पृथिवी और अग्नि के अधिकार में है वह सब तृप्त होता है उस सब की तृप्ति के अनन्तर प्रजा पशु ऐश्वर्य और ब्रह्म तेज से यजमान तृप्त होता है चौथी आहुती—

'समानाय स्वाहा'

पढ़ कर देवे इस से समान की तृप्ति होती है समान के तृप्त होने पर मन तृप्त होता है मन के तृप्त होने से परिजन्य तृप्त होता है परिजन्य के तृप्त होने पर विद्युत् तृप्त होता है बिजली के तृप्त होने पर जो कुछ बिजली और परिजन्य के अधिकार में है वह सब तृप्त होता है तदनन्तर प्रजा पशु ऐश्वर्य सांसारिक बल और ब्रह्म तेज से यजमान तृप्त होता है पांचवीं आहुति—

'उदानाय स्वाहा'

पढ़ कर हवन करे इस से उदान की तृप्ति होती है उदान की तृप्ति से त्वचा की तृप्ति त्वचा की तृप्ति से वायु की तृप्ति वायु के तृप्ति होने पर आकाश की तृप्ति होती है आकाश के तृप्त होने पर जो कुछ वायु और आकाश के आश्रित है वह सब तृप्त होता है वह यजमान प्रजा पशु ऐश्वर्य सांसारिक तेज और ब्रह्म से तेज तृप्त होता है छान्दोग्य उपनिषदि पञ्चम प्रपाठके ॥

प्रश्न–सकारे सूतकं विद्धि वकारे रिपु वर्द्धनम् ।
हकारे ब्रह्महत्याच आहुति कुत्र दीयते ॥

सकार में आहुति देने से सूतक होता है, वकार में शत्रुओं की वृद्धि होती है और हकार में ब्रह्म हत्या होती है तो आहुति कहां देनी चाहिये ॥ प्रयोग पारिजातके ॥

सकारे च वकारे च हकारे च परित्यजेत् ।
स्वाहान्ते जुहुया द्विद्वान् एतद्धो मस्य लक्षणम् ॥

सकार और वकार तथा हकार को त्याग दे स्वाहा के अन्त में विद्वान् आहुति देवें यह होम का लक्षण है । इस आदेश को उपलब्ध कर ऋषि जीवन्मुक्त हो गये ॥

इत्यमर कथायां शिव पार्वती संवादे आहुति प्रमाणं आध्यात्मिक यज्ञ विधाने द्वितीयो अध्यायः ॥

(५)

ओं यत्र ज्योति रजस्रं यस्मि ल्लोके स्वर्हितम् तस्मिन् मां धेहि पवमाना मृते लोके अक्षत इन्द्राये इन्दो परिश्रव ॥

अर्थ—(हे पवमान) पवित्र स्वरूप (इन्दो) सर्वानन्ददायक

(यत्र) जहां (अजस्रं) निरन्तर (ज्योतिः) तेज है (यस्मिन्) जिस (लोके) लोक में (स्व) सुख (हितं) स्थित है (तस्मिं) उस (अमृते) अमर (अक्षिते) नाश रहित (लोके) लोक में (मां) मुझ को (इन्द्राय) परमैश्वर्य आदि के लिये (धेहि) धारण कीजिये (परिश्रव) आनन्द वर्षाइये ॥

भावार्थ—हे अविद्यादि क्लेशों के नाश करने वाले पवित्र स्वरूप परमात्मन् सर्वानन्द दायक सर्व के अपने आप जहां तेरे स्वरूप में निरन्तर व्यापक तेरा तेज है जिस ज्ञान से देखने योग्य तुझ में नित्य सुख स्थित है उस जन्म मरण से रहित आपके अविनाशी अर्थात् द्रष्टव्य अपने स्वरूप में आप मुझ को परमैश्वर्य अर्थात् एकता प्राप्ति के लिये कृपा से धारण कीजिये और मुझ पर माता के समान कृपा भाव से आनन्द की वर्षा कीजिये आप ही हमारे एक आधार हैं आपको छोड़ कर कहां जायें आपके चरण शरण में पड़ा हूं ओम् ॥

(६)

यत्र राजा वैवश्वतो यत्रावरोधनं दिवः यत्रामूपहुति राप स्तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिश्रव ॥

अर्थ—(हे इन्दो) आनन्दप्रद देव (यत्र) जिस तुझ में (वैवश्वतः) सूर्य का प्रकाश (राजा) प्रकाशमान हो रहा है (यत्र) जिस आप में (दिवः) द्युलोक अर्थात् बुरी कामनाओं की (अवरोधनं) रुकावट है (यत्र) जिस आप में (अमू) वे कारण रूप (पहुतिः) बड़े व्यापक आकाशस्थ (आपः) प्राणप्रद वायु हैं (तत्र) उस अपने स्वरूप में (मां) मुझको (अमृतं) मोक्ष प्राप्त (कृधि) कीजिये (इन्द्राय) परमैश्वर्य

के लिये (परिश्रव) मुझको प्राप्त हूजिये ॥

भावार्थ—हे आनन्द प्रद परम पिता परमात्मन् जिस आप में सूर्य का प्रकाश प्रकाशमान् हो रहा है और हे स्वामिन् जिस आप में बिजली अथवा बुरी कामनाओं की रुकावट हैं हे प्रभो ! जिस आप में वे कारण रूप बड़े व्यापक आकाशस्थ प्राणप्रद वायु हैं उस अपने स्वरूप में मुझको मोक्ष प्राप्त कीजिये और हे परम दयालो पतित पावन परमैश्वर्य के लिये आर्द्र भाव से आप मुझको प्राप्त हूजिये यह आप से विनय है ॥

(७)

यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिश्रव ॥

अर्थ—(हे इन्दो) परमात्मन् (यत्र) जिस आप में (अनुकामं) इच्छा के अनुकूल (चरणं) विचरना है (यत्र)जिस (त्रिनाके) तीसरे स्वर्ग पर (त्रिदिवे) तीनों प्रकाशके ऊपर (दिवः) स्वतः प्रकाश करने वाले (लोका) यथार्थ ज्ञान युक्त (ज्योतिष्मन्तः) ज्योति स्वरूप ज्ञान स्वरूप प्रकाश वाले हैं (तत्र) उस में (मां) मुझ को (अमृतं) मोक्ष प्राप्त (कृधि) कीजिये (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये (परिश्रव) प्राप्त हूजिये ॥

भावार्थ—हे परमात्मन् अनन्तानन्द स्वरूप मेरे अपने आपे जिस आपमें इच्छा के अनुकुल स्वतंत्र विचरना है जिस त्रिविध अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक, और आधिदैविक, दुःख से रहित तीन सूर्य विद्युत् और सौम्य अग्नि से प्रकाशित सुख स्वरूप में कामना करने योग्य शुद्ध कामना वाले यथार्थ ज्ञान युक्त शुद्ध विज्ञान युक्त मुक्ति को प्राप्त हुए सिद्ध पुरुष स्थिर आनन्द भोगते

हैं उस अपने स्वरूप में मुझको मोक्ष प्राप्त कीजिये और परमैश्वर्य के लिए मुझको प्राप्त हूजिये मैं आपकी शरण हूं।

(८)

यत्र कामा निका माश्च यत्र वृध्नस्य विष्ठपम् स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिश्रव।

अर्थ (हे इन्दो) आनन्द स्वरूप (यत्र) जिस आप में (कामा) सब कामना (निकामा) निष्कामना हो जाती है (च) और (यत्र) जिस आप में (वृध्नस्य) बड़े सूर्य का (विष्टपं) विशिष्ट सुख (च) और (यत्र) जिस आप में (सुधा) अपना ही धारण (च) और (तृप्ति) पूर्ण तृप्ति है (तत्र) उस रूप में (मां) मुझको (अमृतं) प्राप्त मुक्ति वाला (कृधि) कीजिये (इन्द्राय) मोक्ष के लिये (परिश्रव) अपना स्व स्वरूप प्रकाशित कीजिये।

भावार्थ—हे निष्कामानन्द प्रद सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मन् सबों के सर्वस्व जिस आपमें सब कामना और अभिलाषा छूट जाती हैं हे महेश्वर जगद्निषेधावधिभूत अनन्त अपार तेजोमय जिस आपमें सबसे बड़े प्रकाशमान सूर्य का विशिष्ट सुख और जिस आप में सुधा अपना ही धारण और जिस आपमें पूर्ण तृप्ति है उस अपने सुख स्वरूप में मुझको अद्वैतामृत वाला अर्थात् प्राप्त मुक्ति वाला कीजिये तथा सब दुःख विदारण के लिये आप मुझ पर करुणा वृत्ति कीजिये।

(९)

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते कामस्य त्राप्ताः कामस्तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिश्रव।

अर्थ—(यत्र) (हे इन्दो) दयालु आनन्द युक्त पारब्रह्म (यत्र) जिस आपमें (आनन्दा) सम्पूर्ण आनन्द (च) और (मोदाः) सम्पूर्ण हर्ष (मुद) सम्पूर्ण प्रसन्नता (च) और (प्रमुद) प्रकृष्ट प्रसन्नता (आसते) स्थित हैं (यत्र) जिस आपमें (कामस्य) अभिलाषी पुरुष की (कामा) सब कामना (आप्ता) प्राप्त होती हैं (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये (मां) मुझको (अमृतं) मृत्यु से रहित (कृधि) कीजिये (परिश्रव) दर्शन दीजिये अर्थात् प्रेम बर्षाइये।

भावार्थ–हे सर्वानन्दयुक्त जगदीश्वर परममित्र सर्वके अस्तित्व जिस आप में सम्पूर्ण समृद्धि और सम्पूर्ण हर्ष और सम्पूर्ण प्रसन्नता और प्रकृष्ट प्रसन्नता स्थित हैं हे परमपति प्राणनाथ जिस आप में, अभिलाषी पुरुष की सब कामनायें प्राप्त होती हैं उसी अपने स्वरूप में परमैश्वर्य के लिये मुझ को जन्म मृत्यु के दुःख से रहित मोक्ष प्राप्त युक्त कीजिये जिस के प्राप्त होने से पुनः संसार में आना नहीं पड़ता—

नच पुनरावर्तन्त अनावृत्ति शब्दात् न स
पुनरावर्त ते, ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति॥

इत्यादि श्रुति और भगवान् कपिल और गौतम भी यही कहते हैं—

नमुक्तस्य पुनर्बद्धयोगः अनावृति श्रुते रथ त्रिविधा दुःखात्यन्त निवृति रत्यन्त पुरुषार्थः बाधना लक्षणं दुःख मिति तदत्यन्त विमोक्षो पवर्गः।

इत्यादि अनन्त अपार मुक्ति वाला मुझको निज स्वरूप में कीजिये और इसी प्रकार सब जीवों को सब ओर से प्राप्त हूजिये ।

एक आप ही का सहारा है यह पांच मंत्र ऋग्वेद मंडल सूक्त ११३ में परमपिता ने स्व स्वरूप की प्राप्ति के हेतु निर्माण किये अर्थात् शुद्धान्तःकरणों में प्रकाशित हुए, उपासना और प्रार्थना इसी का नाम है जब रोम २ में परममित्र परमेश्वर का प्रेम प्रवाहित होने लगे अपना आपा मिट जावे सब वही विदित हो जैसाकि गान्धारी पाण्डव गीता में कहती हैं—

त्वमेव माता चपिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देवः ॥

एक महात्मा कहते हैं—

त्वमसि ममभूषणं त्वमसि ममजीवनं त्वमसि मम जलधिरत्नं ।

और भी हिन्दी भाषा में कहा है—

॥ सवैया ॥

मात तुही गुरुतात तुही ममभ्रात तुही प्रभु धान्यभण्डारो ।
ईश तुही जगदीश तुही मम शीश तुही प्रभु राखनहारो ॥
राव तुही उमराव तुही मनभाव तुही मम नैन को तारो ।
सार तुही करतार तुही परिवार तुही घरबार हमारो ॥१॥

मां छोटे बच्चे को आम्रफल खेलने को देती है, बच्चा दस्तूर के म्वाफ़िक हाथ से पकड़ कर मुंह के पास ले जाता है और चूसने लगता है चूसतेर अन्तिम वह फल फूट पड़ा और बच्चे के हाथ पैर, मुंह पर, कपड़ों पर, रस ही रस फैल गया अब तो न कपड़े याद हैं न मां याद है न हाथ मुंह का ही होश है रसरूप होरहा है इसी तरह श्रुति माता का दिया हुआ यह पका हुआ महा वाक्य रूपी

अमरफल जब एकान्त में अन्तःकरण के साथ दुहराते २ आखिर फूट पड़ता है और परमानन्द समाधि आजाती है जैसा कि भगवान पतञ्जलि कहते हैं—

"ईश्वर प्रणिधानात्समाधि सिद्धिः ॥

और भी—

सा जिह्वा या हरिं स्तौति तच्चित्तं यत्तदर्पणम् ।
तावेव केवलौ श्लाघ्यौ यौ तत्पूजा करौ करौ ॥

तथा चोक्तं गरुड़ पुराणे ॥

जिह्वा वही है जो हरि भगवान की स्तुति करे, चित्त वही है जो उन के अर्पण हो और केवल वही हाथ सराहनीय है जो उन की पूजा में अर्थात तन्निमित्त दानानुरक्त रहते हों, अनन्य भक्ति वाला पुरुष यदि वह विद्वान् भी न हो तदपि परमेश्वर को उत्तम पतिव्रता के सदृश अनन्य भक्ति से भजता हो जैसा कि रामायण में लिखा है—चौपाई:—

उत्तम के अस बसे मनमाहीं स्वपनेहु आन पुरुष जग नाहीं ॥

ऐसा विश्वास हमारा परमेश्वर पर होता है, और उसे छोड़ कर हम किसी की अभिलाषा नहीं करते तब वह अपने आप हम को प्राप्त होजाता है वरञ्च उसका सर्वस्व हमको मिल जाता है जिस प्रकार निम्नलिखित एक गाथा है पाठकगण ध्यानपूर्वक पढ़ें कि पूर्व किसी समय में चन्द्रपुर में विजयधर नामक राजा था, उस की पटराणी विद्याधरी चन्द्रमुखी आदि रूप यौवन और सुशीलता आदि से युक्त राजा को अत्यन्त प्रिय थीं, परन्तु एक सुमति नामक उसकी साधारण स्त्री थी जिस पर राजा का प्रेम कुछ भी

विदित नहीं होता था, यद्यपि महाराज समदर्शी थे तथापि योग्यता बिना वह प्रेम सूर्य की किरणों सदृश जिस प्रकार सूर्य की किरण आतशी शीशे में अग्नि प्रज्वलित करती हैं इसी प्रकार जब अपनी ओर अनन्य भक्ति और प्रेम का प्रभाव अत्यन्त दृढ़ परिज्ञात हो जाता है उस समय प्रत्येक पुरुष प्रेम के आधीन हो जाता है सुमति कुछ विचार में थी कि इतनेही में एक साधू महात्मा सन्यासी आन उपस्थित हुए सुमति ने 'भिक्षां देहि' २ शब्द को श्रवण कर यथोचित भिक्षा से महात्मा का सत्कार किया और पूछा कि महात्मन मेरे पति की मुझ पर अत्यन्त श्रद्धा हो ऐसा कोई उपाय कथन कीजिये "पति वियोग सम कोइ दुःख नाहीं" महात्मा ने कहा कि आज से ही अपने पति के अतिरिक्त दूसरी वस्तुओं से राग छोड़ दो और किसी वस्तु आभूषण खानपान अनुरक्तता मत रक्खो तुम को कोई पदार्थ मिले उन को न ले कर दिन रात पति का चिन्तन करो चाहे तुम रूपवती हो न हो विद्या हो न हो इनसे कोई प्रयोजन नहीं केवल प्रीतम में सच्चा प्रेम और दृढ़ विश्वास हो, यही हमारा उपदेश है राणी ने उसी रोज़ से यह दृढ़ भक्ति द्वारा गुरु उपदेश अपने हृदय में धारण कर लिया कतिपय दिवसों के अर्थात् कुछ कालान्तर में रशिये के निवासी रूस सम्राट् से महान् जङ्ग आरम्भ हो गया उस युद्ध में महाराज विजयधर की विजय हुई और राजा ने रशिये की राजधानी में अपनी राजधानी नियत की और अपना प्रतिनिधि स्थापित कर हर्षित हो कर राणियों को पत्र लिखा कि यहां नाना प्रकार के रत्न जड़ित आभूषण, मनोहर वस्त्र और प्रत्येक पदार्थ उपस्थित अर्थात् विद्यमान हैं,अपनी रुचि के अनुसार यथेच्छ वस्तु मंगाने के लिये लिखो जो वस्तु तुम मंगावोगी वही तुम को प्रस्तुत की जावेगी, यह मेरा सच्चा वचन है हमारी विजय हो गई

है जो तुम मांगोगी सो देने को तैयार हूं यह पत्र जब चन्द्रपुर में रानियों को प्राप्त हुआ तो सब ने अपनी२ रुचि के अनुसार यथेच्छ वस्तु इस प्रकार पत्रों में लिखी किसी ने हार, किसी ने रत्नजटित साटिका, किसी ने अमूल्य मुक्ताओं की माला, किसी ने कुछ, अपने पत्र में लिखा किसी ने कुछ। जब छोटी रानी को कहा गया कि तुम भी कुछ मंगाओ तब सुमति ने भी प्रसन्नता पूर्वक पत्र पर एक सीधी रेखा खींच दी क्योंकि पढ़ी तो थी ही नहीं, भक्ति अपार थी, पत्र देदिया जब सर्व रानियों के पत्र राजा के समीप पहुंचे तब वाचक ने राजा को क्रमशः सुनाने आरम्भ किये तब लहोरी रानी का पत्र हाथ में लिया तो वाचक महाशय विस्मित हो गये और प्रेम से कंठ रुद्ध रोमाञ्च प्रफुल्लित हो गये राजा बोले पत्र में क्या लिखा है वाचक बोला महाराज रानी ने एक रेखा खींची है कि मुझे तो केवल एक आप ही की इच्छा है राजा बहुत प्रसन्न हुआ क्योंकि राजा की प्रतिज्ञा सत्य थी उसने अपने मंत्री को स्व-देश गमन के लिये आज्ञा दी वहां अपना प्रतिनिधि नियत कर सेनापति सहित सर्वदल संयुक्त राजा स्वदेश को प्रस्थित हुए निदान पथ्य पथ गमन करते चन्द्र पुर में आन पहुंचे राजा तुरन्त ही जो २ वस्तु रानियों ने मंगाई थी उनको विभक्त कर अन्तःपुर को प्रस्थित कर आप सुमति के यहां सर्व ऐश्वर्य सहित प्राप्त हुए यह समाचार और पटरानियों ने सुना तो अत्यन्त व्याकुल हुई परन्तु राजा का नियम सत्य था रानियों ने बहुत पश्चाताप किया और राजा से निवेदन भी बहुत किया परन्तु राजा ने एक भी स्वीकार न कर उत्तर दिया कि मैं तो अब इसी का हो चुका राज्यादि सहित तुमको जो पदार्थ प्रिय था वह तुमको मिलगया मैं तो तुमको प्यारा ही न था मैं तो इसी रानी को प्यारा था सो सर्वदा

काल के लिये मैं सुमति को प्राप्त होगया। इसी प्रकार जो भक्त परमेश्वर से मान प्रतिष्ठा अथवा धन पुत्रादि की वाञ्छा करते हैं उनकी गति उन ही रानियों कैसी होती है और जो केवल परमेश्वर की ही इच्छा करते हैं उनको मोक्ष सहित परमेश्वर ही मिल जाते हैं।

(१०)

विश्वानि देव सवित र्दुरितानि परासुव।
यद्भद्रं तन्न आसुव। यजु० अ०३०मं० ३॥

(हे सवितः) सकल जगत् के उत्पत्ति कर्ता समग्र ऐश्वर्य युक्त (देव) शुद्ध स्वरूप सुखों के दाता परमेश्वर आप कृपा करके (न) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण दुर्व्यसन और दुःखों को (परासुव) दूर कर दीजिये (यत्) जो (भद्रं) कल्याणकारक गुण कर्म स्वभाव और पदार्थ हैं (तत्) वह, सब हमको (आसुव) प्राप्त कीजिये॥

भावार्थ—हे सच्चिदानन्दानन्त स्वरूप, हे परम कारुणिक, हे अनन्त सामर्थ्य युक्त, हे परम कृपालो, हे अनन्त विद्यामय देव, हे सूर्यादि सर्व विद्याओं के प्रकाशक, हे सर्वानन्द प्रद, हे सकल जगत् उत्पादक सर्व शक्तिमान् आप सब जगत् को उत्पन्न करने वाले हो हमारे सब जो दुःख हैं उनको और हमारे सब दुर्गुणों को कृपा से आप दूर कर दीजिये, अर्थात् हम से उनको और हमको उनसे सदा दूर रखिये। और जो सब दुखों से रहित कल्याण है जोकि सब सुखों से युक्त भोग हैं उसको हमारे लिये सब दिनों में प्राप्त कीजिये, सो सुख दो प्रकार का है एक जो सत्य विद्या की प्राप्ति से अभ्युदय स्वर्ग, अर्थात् चक्रवर्त्ति राज्य, इष्ट, मित्र, धन, पुत्र, स्त्री, और

शरीर से अत्यन्त सुख का होना और दूसरा जो निःश्रेयस सुख है कि जिसको मोक्ष कहते हैं और जिसमें यह दोनों सुख होते हैं उसी को भद्र कहते हैं उस सुख को आप हमारे लिये सब प्रकार से प्राप्त करिये और सब विघ्न हम से दूर रहें कि जिससे हम आप को प्राप्त हो जावें।

(११)

ॐ यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवन्त तदुसुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमज्ज्योतिषां ज्योतिरेकन्तन्मेमनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

(यत्) जो (जाग्रतः) जागते का (दूरं) दूर (उदैति) जाता है (दैवं) स्वर्गीय प्रकाश स्वरूप (तत्) वह (उ) ही (सुप्तस्य) सोये हुये का (तथैव) उसी प्रकार (एति) आता है (दूरङ्गमञ्) दूर जाने वाला (ज्योतिषां) ज्योतियों का अर्थात् प्रकाशकों का (ज्योतिः) प्रकाशक है (एकं) एक (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन चित्त (शिव) शुभकल्याणकारी सुख स्वरूप (सङ्कल्प) इच्छा (अस्तु) हो॥

भावार्थ—मेरा मन कल्याणकारी शुभ इच्छा वाला हो जो जाग्रत् अवस्था में दूर जाता है और सुषुप्ती अवस्था में उसी प्रकार लौट आता है जो दिव्य है दूर जाने को समर्थ है और प्रकाशकों अर्थात् इन्द्रियों का प्रकाशक है॥

व्याख्या—इस वेद मन्त्र में परम पिता परमेश्वर ने सब जीवों को मानसिक शक्ति को शुद्ध करने के लिये अर्थात् शुभ सङ्कल्पों के लिये आज्ञा दी है कि यह मेरा ब्रह्माण्ड मन सर्वअवस्थाओं को प्रकट करने वाला है हे जीवो! तुम्हारे लिये शुभ हो, तुम भी यही प्रार्थना करो कि हमारा चित्त कल्याणकारी शुभ सङ्कल्प मय हो क्यों कि मन के पवित्र बाह्याभ्यन्तर लौकिक पारलौकिक जीवन

आनन्द मय अर्थात् कल्याणकारी मोक्ष का हेतु होकर सर्व दुःखों का नाशक होता है यही वेद का अनुपम उपदेश और इस का धारण करना मनुष्य जन्म का मुख्य उद्देश है इस मन ही को अन्तःकरण कहते हैं वेदान्त शास्त्र के अनुसार मन की चार शक्ति अर्थात् धारायें वर्णन की हैं। प्रथम वह शक्ति कि जिसके द्वारा मनुष्य इन पदार्थों को साधारण रूप से देखता है। दूसरी वह शक्ति कि पदार्थों के देखते ही जिस के द्वारा उन में भिन्नता प्रतीत हो। तीसरी वह शक्ति कि जिस के द्वारा पदार्थों को अपना बना लेता है। चौथी वह शक्ति कि जिस के द्वारा प्रत्येक पदार्थ के अपकृष्ट और उपकृष्ट गुणों का ज्ञान हो जैसे कि आम खट्टा और पित्त कारक होता है, अनार शीतल और पित्त को शान्त करता है, इसी मन को मन बुद्धि चित अहङ्कार आदि नामों से वर्णन करते हैं जैसा कि 'चित्ति संज्ञाने' से चित्त 'मन ज्ञाने, से मन अर्थात् जिसके द्वारा लौकिक पारलौकिक बाह्याभ्यन्तर विषयों का ज्ञान हो उसे मन कहते हैं यही मन दो प्रकार का है एक वह जो प्रवृत्ति मार्ग में गमन करता है दूसरा जो निरन्तर निवृत्ति मार्ग की ओर सर्व मनुष्यों को आकर्षण करता रहता है एक को शुद्ध और दूसरे को अशुद्ध कहते हैं जैसा कि ब्रह्म विन्दु उपनिषद् में लिखा है—

ॐ मनोहि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेव च।
अशुद्धं काम सङ्कल्पं शुद्धं काम विवर्जितम् ॥

मन शुद्ध उत्तम अशुद्ध अधम भेद से दो प्रकार का कहा है काम युक्त मन को अशुद्ध और काम रहित को शुद्ध कहते हैं॥

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः।
बद्धाय विषयाः सक्तं मुक्त्यैनिर्विषयं स्मृतम् ॥

मन ही मनुष्यों के लिये मुक्ति और बन्धन का कारण है विषयासक्त तो बन्धन का कारण होता है और विषयासक्ति रहित मुक्ति के लिये माना है—यथा ब्रह्म विदु०

यतोनिर्विषयस्यास्य मनसो मुक्तिरिष्यते ।
तस्मान्निर्विषयं नित्यं मनः कार्यं मुमुक्षुणा ॥

मन का विषयों से रहित होना मुक्ति का कारण माना है इस लिए मुमुक्षु जनों को मन को विषयों से रहित करना चाहिये ।

निरस्तविषयासङ्गं सन्निरुद्धं मनोर्हृदि ।
यदा यात्युन्मनी भावं तदा तत्परमं पदम् ॥

विषयभोग को त्याग मन जब हृदय में रुक कर स्वस्थिर हो जाता है तब यही उस के लिये परम पद है ॥

तावदेव निरोद्धव्यं यावद् हृदि गतं क्षयम् ।
एतज्ज्ञानंच मोक्षंच अतोऽन्योग्रन्थ विस्तरः ॥

मन को तब तक रोके रहना चाहिये जब तक हृदय में क्षय न होवे यही ज्ञान है और यही मोक्ष है । क्योंकि यह शुद्ध मन प्रकृति माया का प्रथम पुत्र है जिस को महतत्व कहते हैं जैसा कि भगवान् कपिल सांख्य शास्त्र में कहते हैं,

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः ।

अर्थात् सतोगुण शुद्ध प्रकाश ज्ञानशक्ति, रजोगुण चमकीला प्रकाश अर्थात् क्रियाशक्ति, तमोगुण ज्ञानरहित द्रव्यशक्ति जैसाकि वैशेषिक शास्त्र में कणाद ऋषि कहते हैं—

क्रिया गुणवत्समवायि कारणमिति द्रव्य लक्षणम् ।

अर्थात् क्रिया गुण से युक्त अर्थात् केवल गुणयुक्त हो ऐसे नित्य सम्बन्धित समवायि कारण को द्रव्य कहते हैं यथा—

पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशंकालो ।
दिगात्मा मन इति द्रव्याणि ॥

इन में से आकाश दिशा और कालक्रिया से रहित और गुणों के सहित है पृथिवी जल तेज वायु मन यह क्रिया गुणवत् हैं और भी कहा है—

मूल प्रकृति रूपिण्या संविदो जगदुद्भवेत् ।
प्रादुर्भूतं शक्ति युग्मं प्राण बुद्ध्यादि दैवतम् ॥
सात्विकस्य ज्ञान शक्ति राजसस्य क्रियात्मिका ।
द्रव्यशक्ति तामसस्य तिस्रश्च कथितास्तव ॥

अर्थ—जब द्रव्यशक्ति महा प्रलय में लय हो कर अन्धकार मय तमोगुण में लय हो जाती है, और वह तमोगुण रजोगुण में लय हो जाता हैं और रजोगुण सतोगुण में लय हो कर साम्यावस्था एकीभाव को जब तीनों गुण स्पन्द रहित होते हैं उसको मूल प्रकृति महामाया आदि नामों से कहते हैं, वह पुरुष परमात्मा अपने पति से एकी भाव हो कर तद्रूप ही हो जाती है, और एक कल्पपर्यन्त अपने प्रीतम का आनन्द भोग करती है तदनन्तर उस के शुद्ध मन पुत्र उत्पन्न होता है माता उसकी महामाया महादेव से प्रार्थना कर नव द्वारों का नगर निर्माण करा कर अपने पुत्र को राज दिवाकर स्वयं आवेगों को प्रवाहित प्रेमपूर्वक करती रहती है। इसी को परमेश्वर की इच्छा शक्ति अर्थात् लीला या मौज कहते हैं। इससे मन में दो लहर उत्पन्न हो जाती हैं एक

प्रवृत्ति परमाणुओं में परस्पर चिपटाव मिलाप, दूसरी वह शक्ति जो पृथक् कर शुद्ध करती हैं, मूल प्रकृति परमेश्वर की मौज से जगत् को उत्पन्न करने के निमित्त दो शक्ति प्रादुर्भूत होती हैं एक महतत्व की रश्मि जो शुद्ध मन ज्ञान का प्रकाशक प्रकृति का आदि-कार्य मन होता है जैसा कि भगवान् कपिल कहते हैं—

महादाख्यं आदि कार्य तन्मनः ।

इसको महत कहते हैं वही प्रकृति का आदिकार्य मन है दूसरा प्राण आकाश को क्रियाशक्ति से क्षोभित करता हुआ जीवन प्रदाता एक देव उत्पन्न होता है यही प्राण और बुद्धि कहलाता है तात्पर्य यह है कि मन में निवृत्ति, और प्रवृति, आत्मानुकूल लहर, और आत्मा से बहिर्गामी प्रतिकूल धारों के उत्पन्न होने को निवृत्ति और प्रवृत्ति कहते हैं इन्हीं में प्रवृत्ति से मोह अहङ्कार कामादि सन्तान उत्पन्न करता है, और निवृति में विवेक वैराग्य शमादि सन्तति यह मन उत्पन्न करता है अथवा या यों कहो कि पश्यक से बदल कर कश्यप रूप धारण कर प्रवृत्ति रूपी दिति से असुर निवृत्ति रूपी अदिति से विवेकरूपी आदित्यादि देवताओं को उत्पन्न करता है प्रथम चित्त का पुत्र अहङ्कार उत्पन्न होता है जैसा कि महाराज विवेक कहता है— विवेकोवाच—

॥ सवैया ॥

नवद्वारन के पर ताहि रचे मन आप सुनों तिन बीच बसाये,
एकरूप होतो परमातम जो बहु भांतिन के पुर मांहिं फँसाये,
सुकरे मन कार्य आप जिते परमातम के पुन माहिं ठराये।
सुजपा कुसमं मणिमाहिं यथा हन स्वेतगुणं गुणलाल दिखाये,

तब चित्तको पूत हङ्कार बड़ो न पिता परमातम को जग गायो,
अति तोतल बैन गयो ढिग जो हँसके परमातम कंठ लगायो,
तब भूलगयो परमातम आप भवमोह भयो यम आप अलायो,
यहै तात यहै ममभात अहै यह खेत यह सुकलत्र सुहायो ॥

॥ सवैया ॥

यह पुत्र सुमित्र अरात बड़ो पुन या वसुधा बल माहि हमारे,
गज अश्व पशु यह कोप अहे पुन एहु सुहृद् सुवन्धु पियारे,
चित्तको फुरणो जेहिंभांत भयो तिमदेव परातम आपन धारे,
अज्ञानमयी बहुनींद भई सुपना बहुभाँतिन भाँति निहारे ॥

तथाच जातोऽहं जनको ममैष जननी क्षेत्रं कलत्रं कुलम् ।
पुत्रामित्रमरातयोः वसु बलं विद्या सुहृद् बान्धवाः ॥
चित्त स्पन्दित कल्पनोमनुभवन् विद्वानविद्यामयीं ।
निद्रामेत्य विघूर्णितो बहुविधान् स्वप्नाननु पश्यति ॥

यथा स्वप्न मयो जीवो जायते म्रियतेपिच ।
तथा जीवाः अमीसर्वे भवन्ति न भवन्तिच ॥

जिस प्रकार स्वप्न के जीव स्वप्न में ही उत्पन्न होते और स्वप्न में ही मर जाते हैं इसी प्रकार यह जाग्रत के जीव हैं...नहीं भी हैं, अर्थात् मायामात्र से हैं, और वास्तव में ज्यों के त्यों बने तने ब्रह्म हैं । और भी:—

स्वप्न माये यथा दृष्टे गन्धर्व नगरं यथा ।
तथा विश्वमिदं दृष्टं वेदान्तेषु विचक्षणैः ॥

अर्थ—इस संसार में नाना पन कुछ नहीं है और जिस प्रकार स्वप्न की माया और गन्धर्व नगर दृष्टिमात्र होता है इसी प्रकार यह सम्पूर्ण संसार है ऐसा विद्वानों ने निश्चय किया है—

न निरोधो नचोत्पत्ति बद्धोन च साधकः ।
न मुमुक्षुर्न वैमुक्तो इत्येषा परमार्थता ॥

अतएव वास्तव में न संसार की उत्पत्ति होती है न प्रलय होता है न कोई मुक्त न कोई बद्ध और न कोई मुक्ति के साधन हैं यही तत्व है।

यथा भवति बालानां गगनं मलिनं मलैः ।
तथा भवत्य बुद्धाना मात्मापि मलिनो मलैः ॥

जिस प्रकार बालकों को आकाश नीला और मलीन प्रतीत होता है, इसी प्रकार अज्ञानियों को एक ही शुद्धात्मा जीवादि भेदों से मलीन प्रतीत होता है।

निश्चितायां यथा रज्वां विकल्पो विनिवर्तते ।
रज्जु रेवेति चाद्वैतं तद्वदात्म विनिश्चयः ॥

जिस प्रकार रज्जु के निश्चय होने पर सर्प रूप संशय निवृत्त हो कर यह निश्चय हो जाता है कि यह रज्जु ही है इसी प्रकार आत्म तत्व के निश्चय होने से यह संसार रूप द्वैत जाल दूर हो जाता है, इन्द्रियों के मोह जाल से यह संसार रूप द्वैत प्रतीत होता है, वास्तव में नहीं और यह उस परमात्म देव की माया है जिस से जीव मोह को प्राप्त हो रहा है इत्यादि शुभाशुभ संकल्प जिस में उत्पन्न होते हैं वह मन है मन ने ही सब जगत् को रचा है जैसा कि शङ्कर भगवान् कहते हैं।

सुषुप्तिकाले मनसिविलीने नैवास्ति किंचित् सकलः प्रसिद्धे।
अतोमनः कल्पित एवपुसां संसार एतस्य न वस्तुतोऽस्ति॥

बस इससे सिद्ध हो गया कि सर्व प्रपञ्च मन से ही प्रतीत होता है मन यदि शुद्ध होता है तो मनुष्य को शुद्धताई प्रतीत होने लगती है और काम सहित अशुद्ध होता है तो मलीनता छा जाती है जब वेद मन्त्रों के द्वारा हृदय की लहर अर्थात् भावों के अनुसार मन की धारें अनुभव रूप हो कर ब्रह्मरन्ध्र सुषुम्ना नाड़ी में एकत्र होकर निरन्तर विचार अर्थात् ध्यान से ईश्वर अर्थात् आकाश की महान् शक्ति को आधीन कर मस्तिष्क में पवित्र धारें उठनी आरम्भ हो जाती हैं और मस्तिष्क के परदों से निकल कर इच्छा शक्ति द्वारा मार्ग में परिवर्तित होती हुई यथोचित स्थान में पहुंच जाती हैं यही मन का विस्तार और आकुञ्चन है अवस्थाओं को इसी स्वभाव से प्रकट् करता है जैसा कि निम्न लिखित गाथा में वर्णन किया है।

एक समय याज्ञवल्क्य जनक के समीप आये अबके संवाद करने का भी कुछ विचार न था परन्तु जनक के यथा योग्य सत्कार से याज्ञवल्क्य प्रसन्न हो बोले हे राजन् वर मांग। तब राजा ने इच्छानुसार प्रश्न करने का वर मांगा। याज्ञवल्क्य ने कहा तथास्तु फिर राजा ने पूछा—

याज्ञवल्क्य किं ज्योति रयं पुरुषः।

हे याज्ञवल्क्य यह पुरुष किस ज्योति के प्रकाश से जाग्रत् में खानपानादि व्यवहार करता है तब मुनि ने उत्तर दिया कि—

आदित्य ज्योति सम्राडिति।

हे सम्राट् आदित्य की ज्योति से यह व्यवहार करता है अर्थात्

सूर्य के प्रकाश से बैठता चलता फिरता है। राजा बोला जब सूर्य नहीं रहता तब ? ऋषि बोले चन्द्रमा से उक्त व्यवहार करता है। राजा बोला सूर्य तथा चन्द्रमा के अस्त होने पर पुरुष की क्या ज्योति व्यवहार की साधक है ? ऋषि ने कहा अग्नि। जब राजा ने कहा घोर अन्धकारमें कुछ न दीखने पर पुरुष की ज्योति क्या है ? उत्तर दिया इस अवस्था में पुरुषवाणी द्वारा ही पुरुष सब व्यवहार करता है क्योंकि ऐसा देखा जाता है कि जब अन्धकार में पुरुष को अपना हाथ भी दृष्टिगत नहीं होता तब जिस ओर से पशु आदि का शब्द आता है उसी ओर उसके निकट जाता है। राजा ने कहा हां ठीक है जाग्रत की अवस्था में ऐसा ही होता है परन्तु स्वप्न में उक्त कोई पदार्थ नहीं होता तब पुरुष की ज्योति कौन है उत्तर दिया कि—

आत्मैवास्य स्वयं ज्योतिर्भवति।

उस काल में इसका अपना आप ही ज्योति होता है अर्थात् जनक बोला— **कतमात्मेति,**

वह कौन आत्मा है जो स्वरूप भूत ज्योति से स्वप्न में सब प्रकार की चेष्टा करता है। उत्तर—

"योऽयं विज्ञान मयः प्राणेषु हृद्यन्तर ज्योति पुरुषः

जो यह विज्ञान मय बुद्धि का स्वामी प्राणों में चेष्टा करने वाला अन्तर हृदय में ज्योति पुरुष है वही आत्मा स्वयं प्रकाश है वही बुद्धि की समीपता से उसके समान धर्मों को धारण करता हुआ इस लोक तथा परलोक में विचरता है, अर्थात् बुद्धि के सम्बन्ध से गन्धादि विषयों का अनुभव कर्ता और कर्मेन्द्रियों से अनेक प्रकार की चेष्टा करता है वह कभी स्वप्नावस्था को भोग कर

जाग्रत् में और कभी जाग्रत् को भोग कर स्वप्नावस्था में जाता है। राजा बोला कि महाराज ठीक है याज्ञवल्क्य ने कहा यही मन जीव दूसरे जन्म को धारण करता हुआ जिस २ शरीर के साथ मिलता है उसी २ के धर्मों को धारण करके अपने कर्मों का फल भोगता है और भोग प्रद कर्मों के समाप्त होने पर पुनः जन्मान्तर को प्राप्त होता है, इस के ये दो ही लोक प्रधान स्थान हैं एक यह जन्म दूसरा पुनर्जन्म और धन्ध्य नामक तीसरा स्वप्न स्थान है इसी स्थान में वर्तमान हुआ जीव दोनों स्थानों को देखता है अर्थात् जिस प्रकार जाग्रत् से स्वप्न और स्वप्न से जाग्रत् में आता हुआ उक्त दोनों अवस्थाओं से भिन्न होता है इसी प्रकार लोक तथा परलोक दोनों का भोक्ता जीव स्वतन्त्र ज्योति है उसका जैसा कर्म होता है वैसा ही जन्म धारण करता है और उसी के अनुसार सुख दुःख का भोक्ता होता है इसी प्रकार जाग्रतावस्था की सब वासनाओं को साथ लेकर उनके अनुसार ही स्वप्न में नाना विध रचना करता हुआ सुख दुःखादि का अनुभव करता है पर उस अवस्था में इस की अपने स्वरूप से भिन्न अन्य कोई ज्योति नहीं होती, यथा—

'प्रस्वपीत्यत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति'

अत्र उक्त अर्थ को स्फुट करते हैं।

'नतत्र रथाः न रथ योगाः न पन्थानो भवन्त्यथ'

इस अवस्था में यह प्रसिद्ध रथ घोड़े और उनके चलाने योग्य मार्ग नहीं होते परन्तु तो भी—

'रथान् रथ योगान् पथः सृजते'

यह जीव रथों को घोड़ोंको चलने योग्य मार्ग को रच लेता है।

न तत्रानन्दाः मुदः प्रमुदो भवन्त्यथा नन्दामुदः प्रमुदः सृजते न तत्र वेपान्ताः पुष्करण्य स्रवन्त्यो भवन्त्यथ वे शान्ता पुष्करण्यः स्रवन्त्यः सृजते सहिकर्ता ॥

एवं जाग्रत् सम्बधि आनन्द और पुत्रादि के सम्बन्ध से होने वाले मोद प्रमोद, क्षुद्र नदियें, तड़ाग, बड़ी नदियें, और झील आदि पदार्थों को जो वहां नहीं होते, उन सबको वासना से रच लेता है, तदेते श्लोकाः भवन्ति। इस विषय में यह श्लोक प्रमाण हैं—

स्वप्नेन शरीर मभि प्रहत्यासुप्तः सुप्ता नभि चाक शीति।
शुक्रमादाय पुनरेति स्थानं, हिरण्य मयः पुरुष एक हंसः॥

यह सुनहरी ज्योतिः स्वरूप हंस निर्मोही अकेला पुरुष कभी स्वप्न से जाग्रत् की ओर जाग्रत् से स्वप्न की ओर विचर कर और उनको नाश कर और उनके कतिपय ज्ञान को लेकर वहीं आता है जहां जागने का निज स्थान होता है।

प्राणेन रक्षन्नवरं कुलायं बहिष्कुलायादमृतश्चरित्वा।
सईयते मृतो यत्र कामं हिरण्य मयः पुरुष एक हंसः॥

जिस प्रकार पक्षी देश देशान्तरों में भ्रमण करके पुनः अपने घौंसले में आकर विश्राम पाता है इसी प्रकार यह एक हंस पाँच प्रकार के प्राणों द्वारा अपने शरीर की रक्षा करता हुआ स्वप्न से पुनः जागृत् में और जाग्रत् से पुनः स्वप्न में आता जाता है परन्तु किसी में लिपायमान नहीं होता।

असङ्गोऽयं पुरुषः ।

जब प्राज्ञ रूपी अपने स्व स्वरूप में स्थित हो कर ब्रह्म में लय हो जाता है जैसा कि कपिल सांख्य में कहते हैं—

समाधि सुषुप्ति मोक्षेषु ब्रह्म रूपता ।

समाधि सुषुप्ति और मोक्ष में ब्रह्म रूपता हो जाती है तद्यथा—

प्रियया स्त्रिया सं परिष्वक्तो न बाह्यं किंचिन् वेदनान्तरं ।

जिस प्रकार अपनी प्यारी स्त्री से गले लगाया हुआ आनन्द में मग्न हो कर बाह्य तथा आन्तर्य किसी विषय को न जानता हुआ तन्मय हो जाता है—

एवायं पुरुषः प्राज्ञे नात्मना सं परिष्वक्तो ।
नबाह्य किंचिन् वेदनान्तरं ॥

इसी प्रकार यह जीव प्राज्ञ परमात्मा के साथ मिल कर उसके कामवर्जित अपहत पाप्मादि धर्मों वाले शान्त स्वरूप को अनुभव करता हुआ बाहर भीतर किसी विषय को नहीं जानता—

अस्यैतदाप्त कामं अकामं रूपं शोकान्तरं ।

इस की कामना पूरी हो कर अकाम रूपी होकर शोक से रहित होता है—

अत्र पिता ऽपिता भवति ।

इस अवस्था में अथवा समाधि अवस्था में पिता पिता नहीं रहता—

माता अमाता लोका ऽलोका वेदा ऽवेदा देवा ऽदेवा अत्र स्तैनो स्तैनो भवति भ्रूणहा ऽभ्रूणहा चाण्डालो ऽचा-

एडालः पौल्कसो पौल्कसः श्रवणो ऽश्रवणःतापसो ऽतापसो नन्वागतं पुण्येन अनन्वागतं पापेन, तीर्णोहि तदासर्वाञ्छो कान् हृदयस्य भवति ।

माता अमाता लोक अलोक देव अदेव वेद अवेद चोर अचोर हत्यारा हत्यारा नहीं रहता। चाण्डाल अचाण्डाल हो जाता है, सङ्कर सङ्कर नहीं रहता, सन्यासी सन्यासी नहीं रहता, तपस्वी तपस्वी नहीं रहता, अर्थात् आनन्द में अत्यन्त नितान्त मग्न होने से उसको किसी विषय की स्मृति नहीं होती, उस समय पाप पुण्य के फल से पार होकर हृदय-गत सब शोकों से रहित हो जाता है उस समय देखता हुआ नहीं देखता क्योंकि अपने अविनाशी स्वरूप भूत चैतन्यरूप ब्रह्म को विषय करता हुआ तन्मय हो जाता है । उस समय वह नहीं सूंघता तो यह नहीं समझना कि गन्ध ग्राहक शक्ति का लोप हो गया किन्तु गन्ध ही नहीं उस अवस्था में तो किसको सूंघे, वह रस लेता हुआ लौकिक रस नहीं लेता इससे यह तात्पर्य नहीं कि उसकी रसात्मिक शक्ति लोप हो गई किन्तु उस अवस्था में वह परमेश्वर का रस लेता है इसी प्रकार वाणी श्रवण मनन स्पर्शन ग्राहक शक्तियें समझनी चाहियें ।

यत्र वा अन्य दिवस्यात् तत्रान्योऽन्य त्पश्ये दन्यो दन्य ज्जिघ्रे दन्योऽन्य दृश्येत् अन्यो अन्यं वदेत् अन्योन्यं श्रणुयात् अन्योन्यं मन्वीत अन्योन्यं स्पृशेत् अन्योन्यं विजानीयात् ॥

निश्चय करके जिस अवस्था में वृतियों के वाह्य पदार्थ उपस्थित रहते हैं उसी अवस्था में दूसरा दूसरे को देखता, दूसरा दूसरे

को सूंघता, दूसरा दूसरे का रस लेता, दूसरा दूसरे का कथन करता, दूसरा दूसरे को सुनता, दूसरा दूसरे को मनन करता, दूसरा दूसरे का स्पर्श करता, दूसरा दूसरे को जानता है।

सलिल एको द्रष्टाद्वैतो भवत्येष ब्रह्मलोकः।
सम्राडिदिति हैन मनुशशास याज्ञवल्क्य ॥

हे राजन् एक निरंजन अद्वैत का समुद्र जो परमात्मा सब का द्रष्टा है वही उसका ब्रह्मलोक वह यही आत्मा है।

एषास्य परमागति रेषास्यपरमा सम्पदे शोस्य परमोलोकः एषोऽस्य परमानन्दः।

यही परमेश्वर इसकी परमगति है यही ब्रह्म इस जीव की परम सम्पदा है अर्थात् उत्कृष्ट सम्पत् विभूति है यही इसका परमलोक है वो यही परमात्मा इसका परमानन्द है।

एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रा मुपजीवन्ति।

यह उपदेश याज्ञवल्क्य ने बड़े समारोह और विस्तार के साथ किया तो गगनमण्डल में पवित्रताई छा गई और महाराज जनक ने कहा अन्तिम यह अनुभव ॥

अनुपन्था विततः पुराणो माꣳ स्पृष्टो ऽनुवित्तो मयैव, ते नधीराअपि यन्ति ब्रह्मविदः स्वर्गंलोकमित ऊर्ध्वं विमुक्ताः

अति सूक्ष्म फैला हुआ पुराना मार्ग मुझ को मिल गया ॐ अर्थात् ब्रह्मानन्द प्रद होने वाला मार्ग मैंने प्राप्त कर लिया है जिस के द्वारा ज्ञानी स्वर्ग से छूट कर ऊपर मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

आत्मानं चेद्विजानीया दयमस्मीति पुरुषः। किमि-

च्छन् कस्य कामाय शरीर मनु संजुरेत् ॥ चेत् यदि अयं पुरुषः आत्मानं परमात्मानं अहमस्मि विजानीयात् ।

यदि पुरुष यह उस परमात्मा को वो मैं ही हूं इस प्रकार जान लेवे तो मैं परमात्मा से भिन्न नहीं अर्थात् वही मेरा आत्मा है तब वह किसी सांसारिक कामना के लिये संतप्त नहीं होता ।

यस्यानुवित्त प्रतिबुद्ध आत्मा ऽस्मिन् सन्देहे गहने प्रविष्टः सविश्वकृत् सहि सर्वस्य कर्ता तस्य लोकः सउलोक एव ॥

'अस्मिन् गहने सन्देहे' इस संसार रूपी गहन वन में जिस ने अपने आप को मैं वही हूं ऐसा जान लिया है, ज्ञान से पूर्व जिस में अनेक प्रकार के संशय होते हैं और ज्ञान होने पर अपने आप को परमानन्द अनुभव करता है वही परमात्मा सबका कर्ता होने से विश्व कृत् कहाता है और विविध सृष्टि उसका लोक प्रकाशक है हम उसको इसी मनुष्य शरीर में जान सकते हैं जैसा कि लिखा है ।

इहैव सन्तोथ विद्मस्त द्वयं नचे द्वेदिमहति विनष्टिः । एतद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःख मेवापियन्ति ॥

यदि इसी शरीर में हम उस ब्रह्म को जान सकते हैं यदि इस देह में न जाना तो दुःख को प्राप्त होना पड़ेगा अर्थात् अपने स्वरूप को बिना जाने दुःख को प्राप्त होते हैं और जो इस को जानते हैं वह परमानन्द मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥

यस्मादर्वाक् सम्वत्सरो होभिः परिवर्तते ।
तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासते मृतं ॥

जिस से सम्वत्सर रूप काल अपने अवयव भूत अहोरात्र के

साथ ही परे हट जाता है अर्थात् ईश्वर को अपनी गति से परिछिन्न नहीं कर सकता इसी लिये विद्वान् लोग सूर्यादि ज्योतियों के प्रकाशक जीवन दाता महाज्योति स्वरूप ब्रह्म की उपासना करते हैं कि हम भी अमृत पद को प्राप्त हो जावें।

मनसैवान द्रष्टव्यं नेह नानास्ति किंचन।
मृत्यो समृत्यु माप्नोति य इह नानेव पश्यति॥

निश्चय करके यह ब्रह्म शुद्ध मन से ही जाना जाता है इस के जानने के लिये अन्य कोई उपाय नहीं और वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है जो इस में नानापन देखता है इस लिये शुद्ध मन मन्त्रों द्वारा करने की आज्ञा शिवसङ्कल्पादि मन्त्रों में दी है इन मंत्रों के जपने से मन की शुद्धि द्वारा परमात्मा प्रेम भक्ति द्वारा शीघ्र प्रकाशित हो जाता है इस हेतु के लिये सर्व मनुष्यों को अपने सङ्कल्प परस्पर कल्याणकारी मङ्गल मय सत्य और शुद्ध बनाने चाहियें और वह इन मन्त्रों के जपने से स्वतः सिद्ध पवित्र होने लगेंगे।

दोहा—मन के हारे हार है मन के जीते जीत।
कहै कबीर हरि पाइये मन ही के परतीत॥
यह मन साधु ले मिलो नहिं तो लेगा जान।
मन मुनसिफ को पूछ ले नीको हो तो मान॥
मन मुरीद संसार है गुरु मुरीद कोइ साध।
जो माने गुरु वचन को ताका मता अगाध॥
या तन में मन कहां बसे निकस जाय केहि ठौर।

गुरुगम हो तो पेख ले नहिं तो गुरु कर और ॥
नयना माहीं मन वसे निकस जाय सब ठौर ।
गुरु गम भेद बताइयां सब सन्तन सिरमौर ॥
दूध फाट घृत दूधे मिला नाद जो मिला अकाश ।
तन छूटे मन तहां गयाजहां धरी मन आस ॥
कबीरा यह गत अटपटी चटपट लखी न जाय ।
जो मन की खट्पट् मिटे अघट् भये ठहराय ॥

इत्यमर कथायां शिवगौरी संवादे चतुर्थो अध्यायः

(१२)

ॐयेन कर्माण्य पशो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः यद् पूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

(मे) मेरा (मनः) मन (शिव) शुभ कल्याणकारी सङ्कल्प शुभेच्छा युक्त (अस्तु) हो (येन) जिस मन से (कर्माणि) कर्मोंको (मनीषिणः) विचारवान (अप्सः) अच्छे स्वभाव के युक्त (विदथेषु) विचारवान पुरुष पाप से लड़ने में (यज्ञे) शुभकार्य में (येन) जिसके (कर्माणि) कर्म (अप्सः) अच्छे स्वभाव के (मनीषिणः) विचारवान (यज्ञे) यज्ञ कार्य में (कृण्वन्ति) करते हैं (विदथेषु) पाप से लड़ने में (धीराः) बुद्धिमान (यत) जो (अपूर्व) आश्चर्य वान (यक्षं) पूजनीय (अन्तः) भीतर (प्रजानां) सृष्टि के (तत) वह (मे) मेरा (मनः) मन इच्छा (शिव) शुभ सुखमय (संकल्प) विचार (अस्तु) हो ॥

भावार्थ—मेरा मन शुभेच्छा युक्त सब प्रजा का कल्याणकारी भक्ति भाव से युक्त पूर्ण करुणामय आर्द्र भाव को नम्रता सुशीलता आदि गुणों को प्राप्त हो जिस मन से शुभ कर्म करने वाले कर्म सम्पत्ति को प्राप्त होने वाले बुद्धिमान विचारवान पुरुष यज्ञ और पाप से लड़ने में कर्म करते हैं अर्थात् 'कर्मणा सम्पत्ति' कर्म सम्पत्ति कर्मों से जो सिद्धि होती है वह कर्म सम्पत्ति है अथवा 'कर्म्मणः सम्पत्ति' कर्म सम्पत्ति कर्म के अनन्तर जो पुरुष को सन्यास आर्जव नम्रता गम्भीरतादि जो गुण प्राप्त होते हैं वह कर्म सम्पत्ति है। कर्म के मुख्य दो भेद हैं कर्तव्य और चरित। पुनः चरित के दो भेद हैं शील और व्रत। पुरुष के आन्तरिक पवित्र भावो को शील और अन्य पुरुषों से जो बर्ताव है उसको व्रत कहते हैं कर्तव्य कर्म भी दो भागों में विभक्त हैं इष्ट और पूर्त जलपान के निमित्त कूप बावली तड़ाग प्याऊ आदि अनाथों को अनाथालय धर्मशाला विद्या के लिये विद्यालय अर्थात् छात्र वृत्ति नियत करना इत्यादि शुभकर्म पूर्त कहाते हैं अब इष्ट कर्म सविस्तार वर्णन किये जाते हैं इष्ट कर्म पांच भागों में विभक्त हैं नित्य, नैमित्तिक, काम्य, प्रायश्चित्त, निषिद्ध, नित्य कर्म।

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञ पितृयज्ञश्च तर्पणम्।
होमो दैवोबलि भौंतो नृयज्ञो अतिथि पूजनम्॥

वेद का अध्ययन करना ब्रह्म यज्ञ, तर्पण करना पितृ यज्ञ, होम करना देवयज्ञ, बलि देनी भूत यज्ञ, अतिथि पूजन नृयज्ञ, ये पांच महा यज्ञ हैं और नैमित्तिक कर्म गर्भाधान से आदि लेकर अन्त्येष्टि पर्यन्त सर्व संस्कार दक्षिणायण उत्तरायण यज्ञ नव सस्येष्टि कार्तिक और ज्येष्ठ में जब नवीन अन्न आवे ऋतु यज्ञ प्रायः व्यवहारों पर

होती हैं, दर्श पौर्णमास यज्ञ पूर्णमासी अमावस्या को और भी जो निमित्त को लेकर की जाय वह नैमित्तिक है ग्रह आदि पुत्रेष्टयादि प्रायश्चित्त उपवासादि प्रायश्चित्त कर्म हैं निषिद्ध द्वेष त्यागादि जिस मन से इन सब उत्तम कर्मों की सिद्धि होती है और जो सर्व प्रजा में ओत प्रोत है वह मेरा मन सर्वदा कल्याण-कारी हो यही विनय मेरी परमेश्वर से है क्यों कि मन के शुद्ध होते ही सब यह शुद्ध ब्रह्म ही प्रतीत होता है।

त्यमर कथायां शिव गौरी संवादे पञ्चमोऽध्यायः

(१३)

यत्प्रज्ञान मुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योति रन्तरमृतं प्रजासु
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु

(यत्) जो (प्रज्ञान) ज्ञान स्वरूप (उत) और (चेतः) चैतन्य स्वरूप (धृति) धैर्य स्वरूप (यत्) जो (ज्योतिः) प्रकाश रूप (अन्तः) बीच में (अमृतं) अमर (प्रजासु) उत्पन्न हुओं में (यस्मात्) जिस से या जिस के विना (न) नहीं (ऋते) विना (किंचन) कोई भी कर्म (क्रियते) किया जाता है॥

भावार्थ—जो प्रज्ञान और चित्त और धैर्य रूप है जो सर्व प्राणियों का अन्तरात्मा स्वरूप अविनाशी ज्योति है जिसके विना कोई कुछ भी कर्म नहीं कर सकता वह मेरा मन शिव सङ्कल्प वाला हो।

(१४)

येनेदं भूतं भुवनम्भविष्यत् परिगृहीत ममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञ स्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु॥

(येन) जिस से (इदं) यह (भूतं) अतीत काल गया हुआ समय (भुवनं) वर्तमान काल (भविष्यत्) अनागत आगे होने वाला काल (परि) पूर्ण रीति से (गृहीतं) जाना जाता है (अमृतेन) अमृत करके (सर्वं) सब (यज्ञ) शुभ कार्य (तायते) रचा जाता है (सप्त) सात (होता) हवन करने वाले (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिव सङ्कल्पमस्तु) कल्याणकारी हो ॥

भावार्थ—मेरा मन ईश्वर परायण सुखमय हो जावे जिस अमर मन से शीघ्र ही यह सब भूत भविष्यत् वर्तमान जाना जाता है और जिस के द्वारा सप्त होता रूपी इन्द्रियों का यज्ञ होता है ॥

पश्चिमी फ़िलासफ़रों ने मन के ३ भाग किये हैं, प्रथम अनुभव, दूसरी इच्छा, तीसरा मानसिक ज्ञान। अनुभव के पुनः दो भाग किये हैं एक इन्द्रिय ज्ञान दूसरा वृत्ति ज्ञान। काम तत्व समस्त वृत्तियों और वासनाओं का मूल है क्षुधा तृषा काम क्रोध लोभ मोह राग द्वेषादि इसी से उत्पन्न होते हैं, यही हम में वाह्य पदार्थों के जानने की और उन से आनन्द वा सुख लाभ करने की इच्छा उत्पन्न करता है स्थूल जगत् के साथ हमारे गूढ़ सम्बन्ध का और वारम्बार जन्म लेने का यही कारण है यह भाग मन का अधिक जड़ता के साथ क्योंकि स्थूल देह तो चाकर के समान है जिस पर काम अर्थात् पाशव वृत्ति राज्य करती है क्योंकि मन के दो भाग हैं एक वह जो काम के साथ मिल कर काम मन कहलाता है इस से मस्तिष्क जात ज्ञान उत्पन्न होता है केवल काम पशु समान है जो मनुष्य को नीच कार्यों की ओर लेजाता है और ईश्वर ज्ञान से विमुख रखता है प्राण काम के साथ सम्बन्धित होने से प्राण वायु कहलाता है जो शरीर के प्रत्येक त्रिसरेणु में फैला हुआ है यही इन्द्रिय ज्ञान की निवास भूमि है।

परमाणुओं से लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्त सम्पूर्ण विश्व नित्य अति सूक्ष्म और अनन्त जीवन के एक रस समुद्र में निमग्न है इस समुद्र का नाम जीव है और जो कुछ इस विश्व में विद्यमान है इसी का स्थूल रूप है हर एक देहधारी जीव रूपी समुद्र में डूबा हुआ उसके कुछ अंश को अपने में लेकर अपना जीवन विदित करता है इसी अंश को प्राण कहते हैं प्राण ही मनुष्य और पशु पक्ष्यादि जीव जन्तुओं के जीवन का आधार है जो लिङ्ग शरीर में स्थित है इसके और स्थूल देह के मध्यमें सेतु के समान है अथवा प्राण उन सूक्ष्म जीवों को कहते हैं जो काम की तरंगें शरीर की थेलियों को स्थूल बनाने के लिये अनावश्यक का त्याग और आवश्यकीय का ग्रहण करती रहती हैं ये भी जीव ही कहलाते हैं जैसा कि कहा है।

जीवो जीवश्च जीवनं जीवो जीवश्च भोजनम्।

यूरोप निवासी पदार्थ विद्याओं के वेत्ताओं कोभी इन जीवों का कुछ ज्ञान हुआ है और वे मानते हैं कि मनुष्य के शरीर में वक्टीर्या और अन्य २ जीव पाये जाते हैं जिनसे कई रोग उत्पन्न होते हैं ब्रह्मविद्या के वेत्ताओं ने सृष्टि के प्रत्येक पदार्थों में जीवन माना है वरञ्च कंकर परमाणु और त्रिसरेणुओं में भी जीवन है वास्तव में कोई पदार्थ जड़ नहीं संसार में जड़ चैतन्य और उद्भिद सृष्टि केवल जीव के प्रकाश की न्यूनाधिकता से मानी गई है। 'माईक्रोबञ्ज' अर्थात् अति सूक्ष्म जीवों से भी अधिक सूक्ष्म जीव हैं जिनको तेजोमय प्राणी कहते हैं यह अति सूक्ष्म जीवों पर राज्य करते हैं उनके जीवन का कारण हैं और उनको स्थूल देह का आकार बनाने की शक्ति प्रदान करते हैं यह तेजो मय प्राणी प्राण

का सार हैं अग्नि परमेश्वर से निकले हैं। साधारण मनुष्यों को तो यह जगत् तत्वों से बना हुआ प्रतीत होता है परन्तु योगी जनों को ब्रह्म का ही रूप विदित होता है अतएव 'प्राणः' इस वेदान्त के सूत्रानुसार प्राण परमेश्वर का नाम है उसी की धार स्थूल से स्थूलान्तर अर्थात् परिणत होती हुई चतुर्दश मण्डल अर्थात् १४ लोक निर्माण करती हैं अव्यक्त अवस्था में अग्नि ईश्वर का प्रकाश अथवा नाम है यही एक सत्य है, व्यक्त अवस्था में अग्नि देव तेजोमय प्राणी का रूप धारण करता है यह प्राणी सर्वाकारों के विनाश के पश्चात् भी रहते हैं इस हेतु इनको भक्षण कर्ता भी कहते हैं इनसे उपहित ब्रह्म को महर्षि व्यास 'अत्ता चराचर ग्रहणात्' ब्रह्म को सबका भक्षण कर्ता चराचर के ग्रहण करने से कथन करते हैं इस संसार में प्रत्येक दृश्य पदार्थ इन ही प्राणों से बना हुआ है जिस प्रकार जलों से हिम वर्फ कुहरादि बनते हैं एक निराकार जीवन से अर्थात् जीत्व से अनेक देहधारी उत्पन्न होते हैं जैसे ब्रह्माण्ड में वैसे मनुष्य में ये समस्त असंख्यात जीव अपनी आकर बनाने की शक्ति सहित प्राण कहलाते हैं जैसा कि भगवान् सनत कुमार नारद के प्रति छान्दोग्य उपनिषद् में कहते हैं।

प्राणः प्राणेन याति प्राणः प्राणं ददाति प्राणाय ददाति प्राणोह पिता प्राणो माता प्राणो भ्राता प्राणः स्वसा प्राणः आचार्यः

अर्थ—इन्द्रिय प्राण द्वारा व्यवहार करते हैं इन्द्रिय भी प्राण हैं इस लिये प्राण प्राण के लिये जाता है प्राण ही सब को प्राणन शक्ति देता है सूर्य चन्द्रादि सब प्राण हैं इस लिये प्राण प्राण को देता है प्राण ही पिता प्राण ही माता प्राण ही भ्राता प्राण ही बनिह प्राण ही आचार्य और प्राण ही ब्राह्मण है, यह एक ही देव नाना

प्रकार से कल्प पर्यन्त स्पन्द और स्पन्दित रूप से प्रकाशित होता हुआ प्रलय में अथवा समाधि में वरञ्च मोक्ष में आत्मा में लय हो जाता है। प्राण देव के आत्मा में लय होजाने पर जीव कृतार्थ अत्यन्तानन्द रूप को प्राप्त होता है वेद मंत्रों के शब्द इन्द्रियों के केन्द्र स्थान को कार्य करने की शक्ति प्रदान न करते हुए आत्मा की ओर आकर्षण कर आत्मा में लय के लिये सहायक होते हैं स्थूल इन्द्रियें अपने केन्द्र स्थान से जो लिंग शरीर में स्थित हैं जिन को आभ्यन्तरिक वा सूक्ष्म इन्द्रियें भी कहते हैं जो वेद मंत्रों से वा ओंकार रूपी वर्णात्मक वा ध्वन्यात्मक शब्द से आकुञ्चित होती हुई अपनी स्थूलता को परित्याग कर शुद्ध मय अर्थात् तेजो मय हो जाती हैं। यह स्मरण रहे कि प्रत्येक शब्द वायु में उसी प्रकार स्पन्द अर्थात् हिल चुल थरथराहट् वा कम्प उत्पन्न कर देता है जिस प्रकार झीलके स्वच्छ स्वस्थिर जल में एक कंकरी फैंकी या मारी हुई हिल चुल उत्पन्न कर देती है। जब प्राण के द्वारा वेद मंत्र वा ओंकार उच्चारण किया जाता है तो समस्त वायु मण्डल में स्पन्दता उत्पन्न कर आकाश मण्डल में प्रतिबिम्ब खींचता है अर्थात् अंकित करता है उस के द्वारा मन शुद्ध होता है इसको प्रत्येक पुरुष स्वीकार कर लेगा कि दोनों प्रकार की इन्द्रियें क्रियात्मक शक्ति प्रवाहक अथवा आभ्यन्तरिक सूक्ष्म इन्द्रियें ज्ञान वाहिनी अन्तवाहक मन बुद्धि चित्त अहंकार आदि सर्व शक्तियें अपना कुछ भी कार्य संचालित नहीं कर सकती यदि जो अथवा जब तक इनको प्राण प्रेरणा न करें और यह प्रेरणा स्थूल और लिङ्ग शरीर में केवल थरथराहट् के समान रहेगी जब तक काम जो इन्दिय ज्ञान का तत्व है वेद रूपी अनुभव में न पलट् दे क्योंकि वेद का अनुभव चौथे तत्व की अर्थात् तुर्यावस्था की चेतना है जब मनुष्य इन्द्रिय

ज्ञान और ऋपु के वश में होता है तो उसकी चेतना उस समय काम अवस्था में होती है उस समय उसको वेद का अनुभव न हो कर सांसारिक पदार्थों में आसक्ति उत्पन्न हो जाती है। इस के वश हो कर बड़े २ विद्वान् रावण सदृश वेद का अनर्थ कर सांसारिक पदार्थों के विज्ञान ही में वेदों के अर्थों को संघटित करते रहे निष्प्रेहि विद्वान गुरु मुख द्वारा सात इन्द्रिय रूपी ऋषियों से मन को पवित्र कर आत्मा रूपी अग्नि में हवन करते हैं जिस से तीनों काल जीत लिये जाते हैं ऐसे पवित्र सर्वोत्कृष्ट वेद मंत्र के ज्ञान को साक्षात् करते हुए परमानन्द में निमग्न हो जाते हैं—।

इत्यमर कथायां शिव गौरी संवादे षष्टोऽध्याय:

(१५)

यस्मिं नृचः साम यजुᳬषि यस्मिन् प्रतिष्ठिताः रथनाभा विवाराः यस्मिं श्चित्तᳬ सर्व मोतं प्रजानां तन्मे मनःशिव सङ्कल्प मस्तु ॥

(यस्मिन) जिस में ऋच: ऋग् वेद (साम:) साम वेद (यजूंषि) यजुर्वेद (प्रतिष्ठिता:) रक्खे हैं (रथ नाभौ) रथ नाभिके (इव) समान (अरा) अरा (चित्तं) ज्ञान (सर्वं) सब (ओतं) ओत प्रोत है (तत्) वह (मे) मेरा (मन:) मन (शिव) सुख रूप (सङ्कल्प) फुरना (अस्तु) हो ॥

भावार्थ—मेरा मन दिव्य विचार युक्त और दूसरों के प्रति सुख स्वरूप फुरना वाला हो जिस मन में ऋक् साम यजु और जिस में अथर्व वेद उस प्रकार रक्खे हैं जैसे चक्र की नाभि में अरा संयुक्त होते हैं और जिस में प्रजा के पदार्थों का ज्ञान और

तत्व ज्ञान ओत प्रोत हैं अर्थात् जिस प्रकार वस्त्र में तन्तुओं की सन्तति होती है उसी प्रकार मन में प्रजा का ज्ञान प्रतिष्ठित है ॥

व्याख्या—इस मंत्र में उस मन के प्राप्त कर लेने की सब जीवों के प्रति वेद भगवान् आज्ञा देते हैं कि प्रार्थना द्वारा उस मन को प्राप्त हो जो शुद्ध महा पवित्र मह तत्व की रश्मि कि जिस में परमेश्वर का सम्बन्धी देवता विषयक ज्ञान ऋग् वेद भुवर लोक सम्बन्धी प्राणायाम का ज्ञान यजुर्वेद स्वर्ग अर्थात् मोक्ष सम्बन्धी विषयक साम वेद ओत प्रोत हों और जिस में सब प्रजा के चिन्तन और प्रादुर्भाव का ज्ञान पट में तन्तु सदृश हो जैसा कि अथर्व वेद के १६वें काण्ड में ऋषि अङ्गिरा समाधि के अनन्तर प्रकाशित करतेहैं॥

अष्टाविंशानि शिवा विशग्मानि सहयोगं भजन्तु मे। योगं प्रपद्ये क्षेमं च क्षेमं प्रपद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु।

हे परमैश्वर्य युक्त मङ्गलमय परमेश्वर आप की कृपा से मुझको उपासना योग प्राप्त हो तथा उससे मुझको अपार सुख भी मिले इसी प्रकार आपकी कृपा से दश इन्द्रिय हस्त पाद गुदा लिङ्ग वाणी यह पांच कर्मेन्द्रियां और त्वचा श्रोत्र चक्षु रसना घ्राण यह पांच ज्ञानेन्द्रियां और दश प्राण सांस को बाहर छोड़ना इस से वृत्ति उत्पन्न होती है और हिरण्यगर्भ के श्वास से यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है बहिर्गामी वायु की सञ्चालक शक्ति को प्राण कहते हैं श्वास को भीतर खैंचना इसके द्वारा वृत्ति और वृत्ति का कार्य भेद ज्ञान लय होता है इस लिये हमारे पूर्वज योगियों के द्वारा वाह्य शुद्धि के निमित्त बहिर्गामी शक्ति से दोनों ओष्ठों को सम कर कण्ठकूप के ऊर्ध्वभाग में ओंकार का नाद घोषित करते थे जिसके द्वारा वायु का धावन भाजना चलना आकुञ्चन सिमटना प्रसारण

फैलना वियोग अलग होना रागद्वेष भय लज्जा मोह ये पाँच आकाश के गुण हैं ओं ये सब साम्य अवस्था में होकर क्षय हो जाते थे तब अपान वायु द्वारा 'सोऽहं शब्द' उच्चारण कर अस्थि मांस त्वचा नाड़ी रोम ये पांच पृथिवी के गुण श्लेष्म, कफ मूत्र, पसीना शुक्र शोणित ये पांच जल के गुण तथा क्षुधा तृषा निद्रा आलस्य संयोग होना ये पांच अग्नि के इन गुणों को साम्य अवस्था में कर षट्चक्रों का नाभि के और मूलाधार के समीप हो कर मेरू दण्ड को चक्र देकर ज्ञान प्रदीप्त कर त्रिकालज्ञता द्वारा कर्मबन्धन को काट ब्रह्मरूपी समुद्र में एकीभाव हो जाते थे। व्यान सर्वत्र-शिराओं में और ब्रह्माण्डगत अग्नि का रूप धारण करने वाली वायु इसी प्रकार उदान तडितवर्ण कंठ के ऊर्ध्वभाग में समान रसों को विभक्त कारक और सङ्ग रखने वाली वायु पाँच उपप्राण (नाग) कूर्म कृकल देवदत्त धनंजय ये दश प्राण मन बुद्धि चित्त अहङ्कार विद्या स्वभाव शरीर और बल ये २८ सब कल्याणों में प्रवृत्त होके उपासना योग को सदा सेवन करें तथा हम भी उस योग के द्वारा ऋग् जैसी वाणी साम जैसा प्राण यजु जैसा मन लाभ करते हुए मोक्ष से मोक्ष को रक्षा से अत्यन्त रक्षा को प्राप्त हुआ चाहते हैं इस लिये हम लोग रात दिन आपको नमस्कार करते हैं ॥

भूयानरात्या शच्या पतिस्त्व मिन्द्रासि विभुः
प्रभुरितिच्वो पास्महे वयम् नमस्ते ऽस्तुपश्यत् पश्यमा पश्यत

'भूयानरात्या', हे जगदीश्वर आप सब प्रजा वाणी और कर्म इन तीनों के पति हैं तथा सर्व शक्तिमानादि विशेषणों से युक्त हैं, जिससे आप अरात्या, अर्थात् दुष्ट प्रजा मन की अशुद्धि मिथ्या रूप वाणी और पाप कर्मों को विनाश करने में अत्यन्त

समर्थ हैं उस आपको विभु सर्वव्यापक प्रभु सर्व ओर ओत प्रोत महानन्द सर्वसामर्थ्य वाले जान के हमलोग आपकी उपासना करते हैं, तो हे जीवो ! परमेश्वर सबको उपदेश करता है, कि हे उपासक लोगो तुम मुझको अत्यन्त दृढ़ विश्वास और सच्चे प्रेमभाव से अपने आत्मा में सदा देखते रहो तथा मेरी आज्ञा और वेदविद्या को यथावत् जान के उसी रीति से आचरण करो। इस कल्याणकारी आकाशवाणी अनुभव प्रकाशक ईश्वर आज्ञा के अनुसार मनुष्य भी ईश्वर से प्रार्थना करें कि हे अनन्त दयालो ! सर्वशक्तिमन् परमेश्वर आप कृपादृष्टि से हमको सदा देखिये इस लिये हमलोग आपको सदा नमस्कार करते रहें, और करते हैं, कि यह हमारा मन शिवसङ्कल्प मय होकर आप में ही लीन हो जावे यथा ॥

॥ इत्यमर कथायां शिव गौरी संवादे सप्तमो अध्याय ॥

(१६)

ॐसुपारथि रश्वानिव यन्मनुष्या न्नेनीयते भीशुभिर्वाजिनइव हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

(सुपारथि) अच्छा सारथि अर्थात् रथवाहक (अश्वान्) घोड़ों को (इव) समान तरह (यत्) जो (मनुष्यान्) मनुष्यों को (नेनीयते) प्राप्त कराया जाता है (अभी शुभिः) वागों से (वाजिनः) घोड़ों को (इव) जैसे (हृत्) हृदय (प्रतिष्ठं) रक्खा है स्थिर है (यत्) जो (अजिरं) जरा रहित (जविष्ठं) वेगवान् (मे) मेरा (मनः) मन (शिव) कल्याणकारी शुद्ध (अस्तु) हो ॥ जो मनके मनुष्यों को अर्थात् सर्व प्राणियों को इस प्रकार प्रेरता है जैसे प्रवीण अत्यन्त निपुण सारथि कृष्ण सम घोड़ों को चलाता है तथा प्रग्रहों से अर्थात्

रस्सियों से घोड़ों को रोकता है और जो मन हृदय में प्रतिष्ठित है और जो जरा वृद्धावस्था से रहित अर्थात् बुढ़ापे से रहित है और सबसे अधिक वेगवान् है वह मेरा मन सच्चिदानन्द परमेश्वर के ध्यान में लीन हो जावे।

व्याख्यान—सच्चे मन से परमेश्वर की आज्ञानुसार जो जीव अर्थात् मनुष्य, देवता, असुरादि, कोई भी हो प्रार्थना, उपासना, और स्तुति, करने लग जाता है तो कौनसा पाप है जो क्षय न हो जाय सूर्य उदय हो और प्रकाश न हो यह तो कदाचित् हो भी जाय परन्तु प्रेमभाव से परमेश्वर की आज्ञानुसार वेदमंत्रों से पाप और जन्म मरण रूपी दुःखों का अत्यन्ताभाव न हो यह कदापि काल नहीं हो सकता धर्मराज अर्थात् मृत्यु काल भगवान् अपने शिष्य जीव रूप नचकेता को उपदेश देते हैं—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेवतु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रह मेव च॥

अर्थ—(आत्मानं) आत्मा को (रथिनं) रथि (विद्धि) जान (तु) और (शरीरं) शरीर को (एव) निश्चय करके (रथं) रथ जान (तु) और (बुद्धि) बुद्धि को (सारथिं) सारथि (विद्धि) जान (च) और (एव) निश्चय करके (मनः) मन को (प्रग्रहं) रासें जान।

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयास्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रिय मनो युक्तं भोक्ते त्याहुर्मनीषिणः॥

(इन्द्रियाणि) दशों इन्द्रियों को (हयान्) घोड़े (आहुः) कथन किया है (तेषु) उन इन्द्रियों में (विषयान्) शब्द स्पर्शादि विषयों को (गोचरान्) मार्ग कहते हैं (मनीषिणः) मनन शील पुरुष (आत्मे-

न्द्रिय मनो युक्तं) शरीर-इन्द्रिय तथा मन इन तीनों से युक्त आत्मा को (भोक्ता) भोगने वाला (इति आहुः) ऐसे कथन करते हैं।

यस्त्व विज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।
यस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः॥

(यःतु) जो तो (अविज्ञानवान्) विषयों में लम्पट् अज्ञानी पुरुष (अयुक्तेन मनसा) संशयग्रस्त गुरु रहित मनसे सदा वर्तमान् (भवति) होता है (तस्य) उसके (इन्द्रियाणि) इन्द्रिय (सारथेः) सारथि के (दुष्टाश्वा इव) दुष्ट घोड़ों के समान (अवश्यानि) वश में नहीं होते॥

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथे॥

(यःतु) जो तो (विज्ञानवान) सम दमादि सम्पन्न अधिकारी (युक्तेन मनसा) अभ्यास तथा वैराग्य से मन को जीतने वाला सदा सदा युक्त (भवति) होता है (तस्य) उसके (इन्द्रियाणि) इन्द्रिय (सारथे) सारथि के (सदश्वाः इव) शिक्षित घोड़ों के समान वश में होते हैं॥

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः
नस तत्पद माप्नोति संसारं चाधि गच्छति॥

(यःतु) जो पुरुष तो (अविज्ञानवान्) विवेक रहित अज्ञानी (अमनस्कः) अवशीकृत मन वाला अर्थात् मन को शुद्ध कर न जीतने वाला सदैव (अशुचिः) अपवित्र बुरे (संस्कारों) से जिसके भाव मलीन हो रहे हैं, लोभ मोह से युक्त विवेक शून्य मलिनात्मा पुरुष (भवति) होता है (स) वह (तत्पदं) ब्रह्म के स्वरूप को अर्थात

अनन्त अपार मोक्ष रूपी अद्वैतानन्द को (नाप्नोति) प्राप्त नहीं होता (च) और बार २ (संसारं) जन्म मरण रूप अपार दुःख मय संसार को (अधिगच्छति) प्राप्त होता है—

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः।
संतु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ॥

(यःतु) जो पुरुष तो (विज्ञानवान्) विवेकी अर्थात् विवेक वैराग्य, सम, दम, उपरम, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान, मुमुक्षुता, और (तत्वं) पद के तत्व का ज्ञाता सर्व साधन सम्पन्न हो कर (समनस्कः) निरुद्ध मन वाला मन को स्वरूप में लय करने वाला सदा सर्वदा (शुचिः) पवित्र भाव युक्त (भवति) होता है (सतु) वही (तत्पदं) परमात्मा के स्वरूप को अर्थात् अपने अनन्त अपार सच्चिदानन्द स्वरूप को (आप्नोति) प्रात होता है (यस्मात्) जिस से (भूय) फिर कभी भी (न जायते) उत्पन्न नहीं होता ॥

इस रहस्य को निम्न लिखित दृष्टान्त द्वारा पाठक गणों को विज्ञप्त करते हैं जिसके द्वारा पाठक गण इस रहस्य से अनायास ही परिचित हो जावेंगे। किसी नगर में धनपति और सुमति नामक, दो वणिक पुत्र धन धान्य सम्पत्ति से परिपूरित रहते थे एक समय उन दोनों को महान् विकट् दुर्धर्ष मार्ग अभीष्ट स्थान के प्राप्त होने के लिये समाप्ति करना पड़ा अर्थात् सुखाप्ति के लिये मार्ग में चलना पड़ा मार्ग सम और सीधा था परन्तु समीप २ अत्यन्त विषम पथच्युत पथिकों को महा रौरव नर्क समान या यों समझो कि राज-मार्ग के समन्तात् अर्थात् सड़क के आस पास महान् गर्त अर्थात् औंडे और चौड़े गढ़े थे कि जिन के ऊपर मरकत मणि सदृश दूर्वा अर्थात् सुन्दर घास जिस से कि वे गढ़े आच्छादित हो रहे थे

और भीतर उन के बड़े २ भयङ्कर विषधर असंख्य सर्प बीछू ततैये बन मक्षिकादि विषम जीव निवास करते थे। उन में से सुमति नामक गुरु भक्त और कुशाग्र बुद्धि था, सारथि भी स्वामी के कार्य में अनुरक्त घोड़ों के साधने में प्रमाद न करता हुआ उनको सीधे मार्ग चलने वाले बना लिया और कृष्ण जिस प्रकार अर्जुन को रथारूढ़ कर कैरव रूपी नदी से पार करते भये इसी प्रकार सुमति रथ में आरूढ़ होकर प्रमाद रहित चित्त की प्रसन्नता पूर्वक सारथि और अश्वों सहित प्रस्थान करता भया और सारथि घोड़े आनन्द पूर्वक दुर्धर्ष मार्ग से पार करते भये और दूसरा जो धनपति था जो अहर्निश विषयासक्त मद्यपानादि मादक द्रव्यों से बुद्धि के नाश करने वाला, सारथि भी उसका समक्ष में प्रशंसक परोक्ष में अत्यन्त विषयानुरागी, घोड़ों को सधाया ही न था, वे दुष्ट तृणों के भक्षण के लोभ से इतस्ततः जाने वाले हो गए, जिस प्रकार अशिक्षित सारथियों के प्रायः हो जाते हैं जब सेठ जी भी अभीष्ट स्थान को प्रस्थित हुए कि थोड़ी ही दूर गए होंगे कि इतने ही में घोड़े हरी घास को देख सड़क से उतर गर्तों में रथ को आकर्षण कर रथ को उलट दिया जिससे सेठ जी नीचे गढ़े में अविद्या का आनन्द भोगने लगे सर्वाङ्ग में सूल छिद गये और बीछू अपने डंकों से लाला जी की हजामत बनाने लगे और सर्प स्त्री विषयक आनन्द का हलुआ खुलाने लगे। लाला जी थोड़ी देर में चिंघाड़ मार २ कर घोड़े और सारथि के सहित यम यातना कर कुम्भी पाक रौरव नर्क को प्राप्त हुए जहां जन्म मरण रूपी विकराल गृध्र और काकों करके पुनः पुनः खाये गये और खाये जायेंगे। वे ही पुरुष जो ईश्वराज्ञा द्वारा आत्मा को पवित्र बुद्धि को विश्वास श्रद्धा युक्त और मन को प्रेम से

सत्य प्रतिज्ञा आदि से अलंकृत् अर्थात् सुशोभित नहीं करते उन की इन्द्रियें यहां तक विषयों में आसक्त होती हैं कि नेत्रों में स्वरूप वन्त स्त्र्यादि को अवलोकन कर रूप की फांसी में फंस कर मन की बाग छूट कर महान् दुर्दशा के भागी होते हैं तात्पर्य यह है कि जिनकी बुद्धि में गुरु भक्ति दृढ़ विश्वास और प्रेम नहीं है, वह दुष्ट रथी की न्यांई अपने मन रूपी बाग को पकड़ इन्दिय रूपी घोड़ों को वेद रूपी सत्मार्ग पर न चला कर असत्य रूपी मार्ग में गमन कर संसार नीच योनि और महा व्याधियों को प्राप्त होते हैं और जिस विवेकी की भवानी बुद्धि महादेव रूपी परम गुरु प्राणनाथ परमात्मा के विश्वास और प्रेम से परिपूर्ण होती है तो मन भी तुरन्त अपने लक्ष्य विषय की ओर इन्द्रिय रूपी घोड़ों को वशीभूत कर परम मोक्ष को सदैव के लिये प्राप्त हो जाता है।

क्या ही अद्भुत और अनुपम दृष्टान्त है सचमुच शरीररूपी रथ में जीवात्मा रूपी साहूकार सवार और बुद्धि उसका साईस और मन लगाम और इन्द्रिय घोड़े हैं और यह वग्गी विषयरूपी सड़क पर चलाई जारही है जिसका विज्ञान रूपी सारथि है वह लगाम को बड़ी सावधानी से पकड़ इन्द्रिय रूपी घोड़ों को शुद्ध विषय वेद मार्ग पर चलाकर अन्तिम जाना कहां है जो विष्णु का परम पद सर्वोत्कृष्ट शुद्ध स्थान है जैसाकि धर्मराज कहते हैं।

यस्तु विज्ञानवान् भवति मनः प्रग्रह वाग्नरः
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥

लक्ष्य तो ब्रह्म तत्व है ब्रह्म साक्षात्कार बिना निर्वाह कहां अनात्म दृष्टि दुःख रूप है, सुखी २ उत्साह पूर्वक चित्त में स्नेह मोहादि रखते हो तो भय्या काले नाग को गोद में दूध पिला २ कर पालते

हो। सत्य स्वरूप एक परमात्मा को छोड़ और कोई विचार मन में रखते हो तो बन्दूक की गोली कलेजे में क्यों नहीं मार लेते। मार्ग में कहां तक डेरे लगावोगे मार्ग में कहां तक महमानियां खावोगे दुनियां सराय में मा तो नहीं बैठी यदि सुख चाहो हो तो चलो शिव के कैलाश को विज्ञान रहित अयुक्त मन वाले के इन्दिय वेवश विगड़े घोड़ों की तरह अभीष्ट स्थान तक तो क्या पहुंचना वरञ्च रथ को और रथ में बैठे को कूओं और गढों में जा गिराते हैं जहां रोना और दाँत पीसना होता है, यदि इसी जन्म के घोर रौरव से बचना इष्ट हो तो घोड़ों को सधाना और सीधी राह पर चलाना रूपी यम नियम की आवश्यकता है, पर लाख यत्न कर देखो जब तक तुम्हारा साईस सारथि धुंधली आंखों वाला काणा सा है तब तक कीचड़ में डूबोगे,रेत में धसोगे, गढों में गिरोगे,चोटें खावोगे, चिल्लाओगे, बाबा सांसारिक बुद्धि को सारथि बनाना दुःख ही दुख पाना है। अब सुनो बात- जय इसी में है कि अपनी मन रूपी बागडोरी देदो उस कृष्ण के हाथ, बस फिर कोई विघ्न नहीं। वह इस संसार रूपी कुरुक्षेत्र,रणभूमि से जय के साथ ले ही निकलेंगे रथ हांकने में तो जगद् गुरु प्रसिद्ध हैं आवश्यकता है हरि को रथ घोड़े और बागें सौंपकर पास विठाने की, अर्थात् उपासना की।

सर्वं धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुच॥

अर्थ—शासक गुरु भगवान् कृष्ण अपने परम शिष्य अर्जुन के लिये यह कहते हैं हे अर्जुन सर्व धर्मों को परित्याग कर केवल मेरी अनन्य शरण अर्थात् एकताई को प्राप्त होजा, शोक न कर मैं सब पापों से छुड़ा दूंगा यह जगद्गुरु कृष्ण वाक्य अत्यन्त आदर-

णीय तथा माननीय और अटल हैं। यह स्मरण रहे कि यदि कांटों पर पड़ जाने से परमेश्वर याद आता हो तो प्यारे जब संसार के काम धन्धों में उलझ कर परमेश्वर विस्मरण होने लगा है तो झट-पट् अपने तईं नुकीले कांटों पर गिरादो और कुछ नहीं तो पीड़ के बहाने तो राम याद आही जावेगा, तात्पर्य यह है कि वह दुःख भी अच्छा है जिस में पीड़ के बहाने तो राम याद आता है वह सुख भी दुःख है जिसमें अहंकार और अभिमान शत्रु प्रबल आ जाएं कि जिससे विषय वासना द्वारा सर्व साधारण पुरुषों की वह गति होती है जैसे जल में पड़े हुए तूंबे की आंधी और आंधि के आधीन होगी या यों समझो कि अयोगी सर्व साधारण मनुष्यों का मन एक मरकट् है, बन्दर स्वभाव से चंचल होता है और फिर उसको किसी ने अहंकार वा अभिमान रूपी मद्य पिला दी तो फिर तो कहना ही क्या इतने में द्वेष का बीछू डस गया अब तो खट्पट् तीव्र मची, लगा न्यारे वारे करने, और आकाश पाताल के कुलाबे मिलाने। इस अवस्था में मन का डाटना महान् कठिन हो जाता है, और उसकी गति निम्न लिखित दोहे के अनुसार होती है—

चल दल पत्र पताक पट्ट दामिनी कच्छप माथ।
भूत दीप दीक शिखा यों मन वृत्ति अनाथ॥

शिष्य गुरु के प्रति यह पूछता भया हे गुरो पीपल का पत्र ध्वजा का वस्त्र भूत दीप दीपक की शिखा जिस प्रकार चंचल होती हैं मन भी ऐसा ही चंचल है जैसाकि अर्जुन कहते हैं।

चंचलं हि मनः कृष्णः प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

हे कृष्ण! यह मन बड़ा चंचल है देह और इन्द्रिय गणों को

क्षोभ कारक है बड़ा बलवान् है और दृढ़ है इस मन को रोक लेना मेरी समझ में ऐसा कठिन है जैसा प्रबल वायु का रोकना। श्री भगवानोवाच—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेनतु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

हे महाबाहो निःसन्देह मन बड़ा चंचल है रुक नहीं सकता है, परन्तु हे कौन्तेय अभ्यास और वैराग्य से निग्रह हो सकता है, जैसाकि निम्न लिखित दृष्टान्त द्वारा सूचित करते हैं:—

किसी नगर में एक बड़ा धनाढ्य साहूकार था, जिसका व्यापार प्रत्येक देश में होता था एक समय अकस्मात् एक पुरुष साहूकार की दृष्टिगोचर हुआ देखा कि उसके कर में चालीस सेर लोहे की शाँग अर्थात् बल्लम थी, आकर साहूकार से बोला कि मुझ को आप अपने यहां नौकर रख लें। साहूकार बोला तू हमारा क्या कार्य करेगा और क्या वेतन लेगा, वह बोला कि कार्य तो जो आप कहेंगे सो ही करूंगा परन्तु नियम यह कर लूंगा, और लिखवालूंगा कि जब आप मुझ को काम न बतलावेंगे तब मैं इस साँग को अर्थात् भाले को आप के उदर में मारूंगा यही मेरी प्रतिज्ञा और वेतन है, और मैं आप से कुछ नौकरी न लूंगा साहूकार उसको भूत न जान कर मनुष्य ही समझ कर यही नियम और प्रतिज्ञा स्वीकार करली कि मेरा पाताल पर्यन्त व्यापार फैला हुआ है यह मुझ को क्या बाधा पहुंचा सकता है, इसमें स्वयम् ही न्यून प्रज्ञा प्रतीत होती है नियम होने के अनन्तर वह भूत बोला जो मनुष्य के रूप में नौकर हुआ था कि लाला जी कार्य शीघ्र बतलाओ नहीं तो यह देखो चालीस सेरी साँग, अब उदर में चलात हूं साहूकार बोला लो यह

हमारा समाचार पत्र बम्बई में हमारे कर्मचारी को दे आओ। वह शीघ्र ही अनुमानिक सवा दो घड़ी में समाचार पत्र दे और मुनीम का ब्योरा ले साहूकार के समीप आ ललकारा कि बतलाओ काम नहीं तो उदर में वही चलादूंगा साँग, साहूकार यह घटना देख बड़ा भयभीत हुआ और जान गया कि यह तो कोई भूत है, मैंने गलती की, हाय राम, अब तो तुही है, हक्का बक्का और कांपता हुआ महाजन बोला लो हुंडी पर्चा पाताल को जाओ और हमारा समाचार श्रवण कराकर पत्र दिखला चौरासी लक्ष रुपये ले आओ। यह सन्देश ले कर वह तो प्रस्थित हुआ और लाला जी शोक और दुःख में निमग्न हो कर सोचने लगा कि यह नहीं छोड़ेगा अब क्या करूं बकरे की मां कहां तक सिन्नी बांटे इतने ही में कार्य कर पुनः वह भूत आगया और बोला बता काम फिर लाला ने उस को और कहीं भेजा और खानपान आप का सब कुछ बन्द होगया, अब काम बतलाने से ही होश नहीं पड़ता, दशा बहुत व्याकुल हो गई, सांस उपरौवा आने लगे, नेत्रों से अश्रुपात होने लगे और अत्यन्त बेकली और तड़फ के साथ हाय राम मुझे बचा। इतने ही में एक महात्मा सन्यासी दृष्टिगत हुए जो पूर्व भी कभी साहूकार के यहां रह गये थे समीप आकर बोले भक्त जी क्या हाल चाल है आप तो बहुत कुछ कृश और दुःखित प्रतीत होते हो ? महाजन को होश आया और महात्मा के दर्शन कर रो कर बोला कि महाराज थोड़ी देर में दुःख का कारण आपको स्वयम् ही विदित हो जायगा मैं आप की शरण हूं महात्मा गुरु के अतिरिक्त इस जीव के उद्धार करने वाला कोई नहीं है। महात्मा बोले हे महाजन ! चिन्ता न कर सब ईश्वर भली करेगा इतने ही में वह भूत आ गर्जा बतला काम नहीं तो लूंगा जान, देख लिखा अपना, यह देख मेरी सांग। साहूकार बोला उत्तर की कोठी पर

चले जाओ। वह चला गया तदनन्तर सेठ बोला कि स्वामी जी! परम पूज्य महात्मन्! यह महान् रोग लगा हुआ है सो आपने देख लिया मैंने अल्पज्ञताई के कारण इस भूत को मनुष्य जान रख लिया परन्तु अब पछताता हूं, खानपान कुछ भी नहीं रुचता, अन्त समय है आपके दर्शन होने थे सो होगये, रेख में मेख मारो तो आप ही मार सक्ते हो और कोई उपाय नहीं। महात्मा बोले भक्तजी चिन्ता न करो अबके आने पर उससे एक तेतीस हाथ का बांस मंगाओ तब मैं आपको उससे बचने की विधि बतलाऊंगा अब मैं कहूं सो कर और किसी से न डर। इतने ही में वो आगया और बोला बतला काम। साहूकार बोला जाओ कहीं से ३३ हाथ का बांस ले आओ वह चला गया और ले आया। महात्मा बोले कि इसको कह ११ हाथ पृथ्वी में गाड़दे। साहूकार बोला पृथिवीमें गर्त खनन कर ११ हाथ सीधा गाड़दो वह वैसे ही करने लगा तब महात्मा बोले अब इसको यह बात कहदो कि इसी पर उतर और चढ़, जब हार जाय तब नाम कटा के चला जाना। उस बांस को गाड़ कर चालीस सेरे भूत ने महाजन से कहा बतला काम। साहूकार बोला कि बस अब हमारे कोई काम नहीं है अबतो यही एक काम है कि तुम इस पर उतरो और चढ़ो और हमको न पूछो और जब तुम हार जाओ तो नाम कटा के चले जाओ। भूत उस पर उतरने और चढ़ने लगा और साहूकार गुरु महात्मा की दया से परमानन्दित हो गया। यह तो रहा दृष्टान्त अब सुनो सचेत होकर इसका दार्ष्टान्त अथवा सारांश।

परिज्ञात हो कि यह जीवात्मा ही साहूकार है और मन ही भूत है यही चालीस सेरा ऊत है या यों कहो कि तोल में चालीस सेर का एक मन होता है जो मन को अपने वश में कर लेता है

उसको ४० शेर अर्थात् बनके सिंह वश में करने कुछ दुर्लभ नहीं। इस मनकी इच्छाशक्ति ही एक शांग है, यह स्मरण रहे कि इच्छा-शक्ति वो शक्ति है जोकि चिन्ता की लहरों को ब्रह्मरन्ध्र से आकर्षण कर मस्तिष्क के परदोंमें होती हुई ईश्वरेच्छा अथवा आकाश शक्ति को स्पन्दित कर संसार मार्ग को दिखलाती हुई यथोचित् स्थानों पर सङ्कल्पों को पहुंचाती रहती है जब इच्छा शक्ति गुरु महात्मा के शब्द ज्ञानाऽनुसार आकाश की शक्ति को अपनी आधीनता में कर लेती है तो इतनी सविस्तर बन जाती है कि जड़शक्ति उसके मार्ग में प्रतिबन्धक नहीं हो सक्ती, जब ये इच्छा शक्ति काम के वेगों से मलीन हो जाती है तब ही जीव उदर के महासङ्कट् रूपी करागार में पड़ा हुआ जन्ममरण रूपी शत्रुओं से व्यथित होता है, यही चालीस सेर की तोलरूपी साँग है जब गुरु मिल जाते हैं तब इस जीव के उद्धार निमित्त एक ऐसी युक्ति द्वारा मेरूदण्ड अर्थात् पीठ की हड्डीरूपी बांस जो ३३ हाथ अर्थात् ३३ गाठों का बना हुआ है कि जिस पर मज्जा तन्तुओं सहित सर्व शरीर का स्वत्व निर्भर है इस को लखाते हुए ११ रुद्रों को प्रकाश कर जीव को एक ऐसी युक्ति बतला देते हैं जिस से कि मन प्राणों के सञ्चालन द्वारा इसी शरीर में बाह्य न जा कर मूलाधार से ले कर अनाम धाम पर्यन्त उतरता चढ़ता रहता है या यों समझो कि गुरु इस जीव को 'ओम्' और 'सोऽहं'का श्वासके साथ अजपा जापको साक्षात्कार करा देते हैं ओ३म् शब्द 'परा पश्यन्ति मध्यमा' अर्थात् मन आदिका रूप धारण करता हुआ वैखरी वाणी के ये सात स्वर उत्पन्न करता है ॐ १ षड़ज २ रीषभ ३ गान्धार ४ मध्यम ५ पञ्चम ६ धैवत ७ निषाद और इनके द्वारा सात रंगों की धारें निकलने लगती हैं इन से सर्व सृष्टि परमाणु रूप धारण कर सम्बन्धित हो उत्पन्न होती है

यह सब कुछ ओंकार ही है, जो भीतर से बाहर को श्वास द्वारा शब्द निकलता है, सोऽहं शब्द की वह शक्ति है जो अपान द्वारा प्राण को खींचते समय आत्मा में कार्य सहित अज्ञान को लय कर सब में सब को अपना आपा जनाती है, इस विषय के सुगम बोध होने के लिये सयुक्तिक दृष्टान्त कथन करते हैं, किसी नगरस्थ राजा और मंत्रि के मध्य परस्पर यह विवाद छिड़ा कि दुर्ग के ऊर्ध्व कमरे में मन्त्रि विराजमान हो जावे और उसके चारों ओर कोई स्थान या कोई साधन सामग्रि न रहने पावे तब भी अपनी बुद्धिमत्ता से उस में से निकल आवे तो मैं उसके राज सहित आधीनता में हो जाऊंगा, यह राजा ने कहा तो मन्त्रि तुरन्त ही दुर्ग के सातवें मंडल पर जा उपस्थित हुआ और राजा भी अपने अन्तःपुर में शयन करता भया, तब रात्रि हुई तो कतिपय रात्रि के व्यतीत होने पर मन्त्रि की पतिव्रता स्त्री दुर्ग के समीप आकर बोली कि हे प्राणनाथ मैं आपकी सेवा करने को तत्पर हूं जो कुछ आप आज्ञा करें सो ही किया जावे तदन्तर मन्त्रि बोला हे प्यारी एक गुबरीला कीट और कुछ रेशम, सूत की सुतली और बहुत सी रस्सी यहां लाकर उपस्थित करो तब मैं अपने कार्य की सिद्धि तुम्हारी सहायता से शीघ्र ही कर लूंगा यह श्रवण कर वह तुरन्त ही यह सब वस्तु ले आई और कहा कि हे नाथ ! अब क्या किया जावे मन्त्रि बोला गुबरीले कीड़े के कमर में रेशम का तन्तु अर्थात् डोरा बांध कर उसके मस्तक पर शहत लगा दो और उसको मेरी ओर दुर्ग की भित्ति पर छोड़ दो जब मेरे समीप यह आजावेगा तब और आज्ञा उचित समझूंगा सो कहूंगा यह श्रवण कर उस देवी ने ऐसा ही किया तब वह कीट सहत की सुगन्धि से ऊपर चढ़ गया तब मन्त्रि ने उसकी कटि से रेशम तन्तु

का खोल अपनी स्त्री से कहा, कि अब इसमें सूत की रस्सी बांध दो देवी ने उक्तानुसार ही किया तब मन्त्रि ने उसे शनै २ खैंच लिया तब डोरी हाथ में आ गई, तब कहा इस में स्थूल रज्जु बांध दो, स्त्री ने भी वैसा ही किया तब स्थूलाकार रज्जुओं को लेकर भवन के थम्भों से बांध नीचे उतर आया अब राजा से मिल कर नियत नियमानुसार राज्य और राजा उसके आधीन हो गये यह तो हुआ दृष्टान्त अब पाठक बृन्द चौकन्ने हो कर दार्ष्टान्त को पढ़ कर विचारें तो अवश्यमेव घट् के पट् खुल कर, अविद्या रूपी हिम गल कर, अशुद्ध मन ढल कर, बुद्धि का बल कर,बाह्य जगत् से चल कर, द्वैत को दल कर,काम को मल कर,मोक्ष के फल कर,परिपूरित हो जावेंगे। अब फोड़ते हैं भांडा साम्राज्य स्वराज्य का अर्थात् परमानन्द की प्राप्ति होने का सुगम उपाय यह है कि नियत समय पर सिद्धासन मार सीधे शरीर से बैठ जाना चाहिये पूर्व स्व गुरु अर्थात् अपने योगोपदेष्टा गुरु को नमस्कार कर किसी इष्ट देव की अथवा गुरु की पवित्र मूर्ति का खुले हुये नेत्रों से न्यून से न्यून आध घंटा ध्यान करें यदि किसी कारण से मूर्ति प्राप्त न हो तो त्रिकुटियों के मध्य भाग अथवा नासाग्र का ध्यान कर लेवे तदनन्तर आंखों को बल पूर्वक मींच कर दसमें द्वार की ओर उलटी पलटने का अभ्यास करे तत्पश्चात् दायें कान को और बायें कान को उंगली से बन्द कर दक्षिण कर्ण की ओर श्रुति को लगावे तब भौंरे और झींगुर चिड़ी चैंकुला आदि की सी आवाज भिन्न २ और विशेष सूक्ष्म शब्दों पर ध्यान देने से घंटे का शब्द सुनाई देने लगता है यह प्रथम नाद है इस के श्रवण से मन की जो धारें हृदय के अनुसार ब्रह्मरन्ध्र में एकत्रित हो रहीं थीं वह परिवर्तित और ऊर्ध्व जो लगातार सोचने से ईश्वरेच्छा आकाश शक्ति मस्तिष्क से उत्पन्न

होती है इच्छा शक्ति उस शक्ति की पथदर्शक होती है जो मस्तिष्क के पर्दों में से निकल बाहर फैलती है यह सब की सब श्रुति के आधीन हो लयता की ओर सूक्ष्म तड़िताकाश के छिद्रान्वेषों को पूरित करती हुई अपने प्रभावाधीन उष्णता और प्रकाश को वेगवान कर जो विचार के मानुषी मस्तिष्क की बुद्धि वा प्रकाश का कौंधा है यह जीवात्मा को अज्ञान रूपी बन्धन में से आकर्षण और विकर्षण रूपी शक्तियों द्वारा संचित क्रियमाण कर्मों को दग्ध करने लगता है और शरीर कृश और हल्का जगत् से उदासीनता और प्रीतम के प्रेम का प्रवाह बहने लगता है यह प्रथमावस्था है। इस प्रथमावस्था रूपी रेशम तन्तु को जो पवित्र बुद्धि रूपी भवानी काम संयुक्त मन रूपी कीड़े की कटि में बांध कर और उस के मस्तक पर ओंकार रूपी सहत बिन्दु लगा कर अनहद शब्द रूपी भित्ती पर ऊपर छोड़ देती है तदनन्तर सूत्रात्मा और धनंजय वायु ऊर्ध्व गति कर महतत्व की रश्मि अपने केन्द्र स्थान की ओर चल कर काम रूपी मन आत्मा के वश में हो कर नष्ट हो जाता है तब प्राणों की सूक्ष्म और अघन धारों को आकर्षण कर आत्मा स्थूल घन धारों को सूक्ष्म धारों की स्पन्दता द्वारा बदल कर आकर्षण करने लगता है तब पांच प्रकार की चित्त वृत्ति प्रलय को प्राप्त हो कर आत्मा परमात्मा से एकीभूत होकर प्राणों की सर्व धारों को अपने आपे में लय करने लगता है। दूसरी अवस्था में सूक्ष्म परमाणु रक्त नील पीतादि सुन्दर रूप बदलते हुए दीखने लगते हैं और तदनन्तर सायं २ करने वाले सब शब्द बन्द हो कर चमकते हुए तारों का सा प्रकाश दिखाई देने लगता है इस अवस्था में सत्य ग्रहण को मन उद्यत हो जाता है शंख और ओं की एकाकार ध्वनि से प्रेम की लहरें जो कि वृत्ति के मुख और चाल को निश्चित कर

उसके शीर्ष को आत्मा की ओर मोड़ देती हैं पुनः हल्की धुंधली फैली हुई श्वेत ज्योति दिखाई देती हैं, तत्पश्चात धीमी २ महीन सारङ्गी किंकरी मधुर वायु दल की घोर वीणा वांसरी आदि की वाणी को अर्थात ध्वनि को ग्रहण कर सप्तावर्ण के दुर्ग रूपी शरीर में से निकल जीव परमेश्वर के रूप को प्राप्त हो जाता है। इस दूसरे प्रकार की अवस्था में ग्रन्थ के विस्तार के भय से विशेष वैज्ञानिक युक्तियों का प्रयोग न कर सामान्य रीति से सर्वावस्थाओं का दाष्टान्त में समावेश कर दिया है अधिक वर्णन और स्थान पर किया जावेगा अब कुछ प्रमाण भी उद्धृत कर पाठकों को परिचित करते हैं

समेशुचौ शर्करावन्हिवालुका विवर्जिते शब्द जलाश्रयादिभिः।
मनोऽनुकूले नतु चक्षु पीड़ने गुहा निवाता श्रयणे प्रयोजयेत् ॥

अर्थ—योग का अभ्यास ऐसे स्थान में करना चाहिये (समे) चौरस (शुचौ) पवित्र (शर्करा) बजरी—महीन सूक्ष्म कंकरी (वह्नि) अग्नि (वालुका) वालु से (विवर्जिते) रहित (शब्द जलाश्रयादिभिः) शब्द और सिलावी आदि से रहित (मनोऽनुकूले) मन के अनुकूल (नतु चक्षु पीड़ने) आंखों को दुःख न देने वाले (गुहा निवाता श्रयणे) एकान्त वायु के झोकों से रहित देश में (प्रयोजयेत) योग करे, अर्थात् ऐसा स्थान हो जहां ऊंचा नीचा न हो, दुर्गन्ध न हो, पत्थर की बजरी चुभती न हो, अग्नि का ताप न हो, वालु उड़कर शरीर में न लगता हो, क्रूर वा ऊंचा शब्द न सुनाई देता हो, जल की सील न हो और आदि शब्द से सर्प भेड़िये आदि का स्थान भी न हो, देखने में नेत्रों को बुरी लगने वाली कोई वस्तु सन्मुख न हो, एकान्त हो, वायु प्रबल न चलता हो, ऐसे मन के अनुकूल अर्थात

मन भावते देश में योगाभ्यास करना चाहिये और भी कहा है-

विविक्त देशे च सुखासनस्थः शुचि समग्रीव शिरः शरीरः ।
अन्त्याश्रमस्था सकलेन्द्रियाणि निरुद्ध भक्त्यास्वगुरुं प्रणम्य ॥

अर्थ—एकान्त स्थान में सुख पूर्वक आसन से बैठ कर तथाच योगशास्त्रे 'तत्रस्थिर सुखमासनम' निरोधावस्था में सुख पूर्वक स्थिति करने के लिये जैसी रुचि हो वैसा आसन वा सिद्धासन से सुख पूर्वक स्थिर हो सब शरीर ग्रीवा और वक्षस्थल उभरा हुआ समासन लगा कर अन्तिम आश्रम अर्थात् वैराग्य में निमग्न होकर इन्द्रियों को निरोध कर अत्यन्त प्रेम और भक्ति भाव सहित अपने स्वगुरु परमानन्द स्वरूप को प्रणाम करे तदनन्तर—

प्राणान् प्रपीड्ये संयुक्त चेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छवशीत
दुष्टाश्च युक्त मिव वाहमेन विद्वान् मनो धारयेताः प्रमत्तः ॥

अर्थ—प्रमाद रहित योग विद्या में निपुण इस योगाभ्यास में प्राणादि वायुओं को खैंच और रोक कर अच्छी युक्त की है चेष्टा जिस ने ऐसा योगी प्राण के निर्बल प्रतीत होने पर नासिका से शनैः शनैः बाहर निकाल दे बिगड़ैल घोड़े जुते हुए रथ के समान इस प्राण को और मन को धारण करे तात्पर्य यह है कि योगी को युक्तचेष्टा वाला होना चाहिये जैसा कि भगवान् कहते हैं ।

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु
युक्त स्वप्नाव बोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

युक्ति के आहार अर्थात् जीवन उपयोगी अल्पाहार और युक्ति के भ्रमण व्यवहार कर्मों में परिमित चेष्टा सोना और जागना भी युक्ति के द्वारा करने से योगी का दुःख नाश हो जाता है और अप्रमत्त

प्रमाद रहित तथा विद्वान् भी होना चाहिये वह अभ्यास के समय प्राण का रेचन करे अर्थात् शनैः २ प्राण को बाहर निकाल दे और जितना काल उचित समझे उतना काल बाहर डाट जिस नासिका छिद्र में वायु का विशेष संचार हो उसके द्वारा पूरक कर कुम्भक करे उसके करने से मन नाद में अनायास रुद्ध होकर ऊपर चढ़ने लगता है तदनन्तर परमेश्वर के प्रकाश करने वाले ये चिन्ह भासने लगते हैं।

नीहार धूमार्कऽनिला नलानां खद्योत विद्युत स्फटिक शशीनाम्।
एतानि रूपाणि पुरः सरणि ब्रह्मण्यभिव्यक्ति कराणि योगे ॥

योग करते समय या यों कहो ओं रूपी नाद में निमग्न हो कर मन रूपी कीट प्राण रूपी भित्ति द्वारा आत्मा रूप मन्त्रि के समीप चलता है तो रेशम तन्तु आदि निम्न लिखित प्रकाशों का आलोचन कर वा आलम्बन कर परमेश्वर राजा को प्राप्त हो सम्पूर्ण प्रकृति का स्वामी हो जाता है वह रूप ये हैं प्रथम निहार कुहर सूक्ष्म २ त्रिसरेणु धूम्र गोल स्याम चक्राकृति सूर्य समान वायु समान अग्नि समान प्रकाशरूपी मण्डलों को उल्लङ्घन कर खद्योत पटवीजना के पक्ष की चमचमाहट तुल्य प्रकाश विद्युत स्फटिक शशि सदृश प्रकाश मण्डलों को अवलोकन कर "योगाग्निमयं शरीरं प्राप्तस्य" योग के तेजो मय शरीर को प्राप्त हो कर "तस्य निरोगः न जरा न दुःखं भवति" उस योगी को न जरा जीर्णावस्था न रोग न कोई दुःख होता है अन्तिम वह परमेश्वर रूप हो जाता है इत्यादि उक्ति और युक्तियों द्वारा यह हमारा मन शुद्ध हो कर आप को प्राप्त हो जावे और आप की कृपा की सहायता से हम लोगों को इस प्रकार आपके निर्देशित वेदरूपी शतपथ पर सदैव चलावे जैसा कि अच्छा सारथि घोड़ों सहित रथ को सीधे मार्ग पर चलाता है जीव परमेश्वर से

शिव सङ्कल्प रूपी षड़ मन्त्रों द्वारा अपने मन को शुद्ध कर अत्यन्त मोक्ष को प्राप्त हो जाता है, और जिससे कि त्रिविधा दुःख का अभाव हो जाता है।

(१७)

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं समूढ मस्य पाꣳ सुरे॥

(इदं) यह जो कुछ है वह विभाग को प्राप्त हो कर अवस्थित है (तद्विष्णुः) उसको विष्णु व्यापक परमेश्वर विचक्रमे पाद विक्षेप से व्यापक करता है किस प्रकार से करता है सो कहते हैं (त्रेधा) तीन प्रकार के भाव से अर्थात पृथिव्यामन्तरिक्ष द्यवीति शाकपूनु निरुक्त में लिखा है पृथिवी अन्तरिक्ष द्यौलोक रूपी पादों करके विष्णु व्यापक है (अस्य) इसका (पाꣳसुल) धूली रहित अन्तरिक्षमें नहीं दीखता "तत्पंद विद्युताख्यं, विद्युतं ब्रह्ममेवाहुः इतिश्रुतेः" वह पद धूली के बिना ही विद्युतनाम से प्रसिद्ध तड़िताकाश में शुद्ध प्रकाश स्वरूप आनन्दमय है विस्पष्ट तात्पर्य यह है कि विष्णु भगवान् ने इस प्रतीयमान जगत् को जब आक्रमण किया उस समय तीन प्रकार से अपने चरणों को स्थापित किया इनही विष्णु भगवान् के धूलीयुक्त चरणों में यह सब जगत उनके अन्तर्भूत ही समाया हुआ है जिस प्रकार सूर्यरश्मि अर्थात् मयूखा अपने केन्द्र स्थान में वरञ्च प्रत्येक पदार्थों को प्रकाशित करती हुई सबों में जीवन सब जीवनों के पीछे किन्तु आभास द्वारा करने वाली सर्व सृष्टियों को मूला ज्ञान तूला ज्ञान के कार्य जन्म मरण असार संसार समुद्र में प्रदीप्त हो प्रभासित हैं व्याख्या यह है कि

सर्वसंसार तीन प्रकार का ही प्रतीत होता है ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, ध्याता, ध्यान, ध्येय, भूमि, अन्तरिक्ष वायु, तड़िताकाश, और शब्दाकाश, और प्रकाश, ये इत्यादि मुख्य तीन मण्डल और भी त्रिपुटि अन्तः करण के आक्षेप विक्षेप आवरण-रूपी मल विक्षेप आवरण दोष हैं कर्म उपासना ज्ञान द्वारा ये नष्ट होते हैं दृष्टान्त जैसे आदर्श में तीन प्रकार के दोषों के होने से कोई पुरुष अथवा किसी पदार्थ का मुख वा प्रतिविम्ब उसमें नहीं पड़ सक्ता यदि शीशे पर मैल हो तदपि अपना मुख समक्ष में अवलोकन नहीं कर सक्ता। यदि मल भी दूर किया परन्तु नेत्र में आवरण हो तब भी कोई अपना मुख नहीं देख सक्ता यद्यपि यह भी दोष दूर कर लिया तथापि शीशे का विक्षेप हिलना हो तब भी हम उसमें मुख नहीं देख सक्ते इसी प्रकार सब दोषों को नष्ट कर उसमें समान प्रतिविम्ब देखते हैं उसी प्रकार अपने मन को निष्कामरूपी अर्थात् परोपकार निमित्त वैदिक कर्मों से पवित्र कर पापरूपी मल को नाश कर देते हैं और अष्टाङ्ग योगरूपी उपासना द्वारा चित्त के विक्षेप को अवरोध कर ब्रह्म के साक्षात् ज्ञान द्वारा मूलाविद्या को नाश कर अपने आपे में आप को ब्रह्मरूप से जानते हैं, तब वह परमेश्वर को अपने आप स्वतःसिद्ध देखतेहैं अर्थात् अनुभव करते हैं, येही तीन प्रकार का जगत् का ज्ञान चौथा तुर्य्यावस्था स्वर्ग का ज्ञान है, वही विष्णु के चरणों से अर्थात् पादों से ओत प्रोत हो कर पाया गया है इसी को स्वर्ग और ब्रह्मलोक कहते हैं, इसको आधिक कथन किया है इसमें प्राणियों की अभ्याहत गति होती है आजकल के पुरुषों को इसी मण्डल का प्रायः ज्ञान वा अनुभव होता है आख्यायिका अलङ्कार द्वारा यह कथन की जाती है कि जिस समय असुरों का राजा बलि महान्

प्रभावशाली यज्ञ करने लगा तब देवताओं का राजा इन्द्र संकुलित और व्यथित हो कर विष्णु भगवान् के समीप जाकर प्रार्थना करने लगा, कि हे पतितपावन परम दयालो परमेश्वर हमारी इन्द्र-पुरी चली जा रही है उसको असुरों का राजा बलि आच्छादित करना चाहता है,हे दीन बन्धो ! हमारी सहायता करो नहीं तो एकसौ यज्ञ पूर्ण हो जाने पर हमको यहां से निकाल देगा और आप का नियम भङ्ग हो जावेगा तदनन्तर विष्णु भगवान् ने उसको धैर्य्य बँधा शान्तिप्रद वचन कहा तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो अभी तुरन्त मैं उस को कश्यप के यहां अवतार धारण कर अवगत कराऊंगा कि तेरा अभी समय नहीं है, और उसको ह्रस्वरूप बावन अंगुल का बन कर पाताल बिठाऊंगा यह श्रवण कर इन्द्र अपने निजस्थान को प्रस्थान कर गया तत्पश्चात् विष्णु बावनावतार धारण कर अभ्यागत रूप से महाराज बलि के यहां पहुंचे । राजा इनका आगमन श्रवण कर आतिथ्य के लिये स्वयं प्रस्थान कर प्रस्थित हुए और अत्यन्त सुन्दर प्रकाश स्वरूप लघुरूप महात्माके दर्शनकर अत्यन्त आनन्दित हुए अर्थात् हर्ष से आल्हादित होकर प्रेमाश्रु पतित होने लगे और प्रेम भरी वाणी से कहने लगे कि हे भगवन् ! कतिपय अपना अभीष्ट अथवा सेवा जो हो सो मैं करने को तत्पर हूं राजा को उत्कट दाननिमित्त उद्यत अवलोकन कर भगवान् बोले हम को अर्द्धत्रय अथवा तीन पद पृथिवी ही अभिप्रेत अथवा पर्याप्त है विशेष अनावश्यक न गहूंगा राजा प्रसन्न हो देनेको कटिबद्ध हुए तभी शुक्राचार्य उस के गुरु ने कहा इस को दान न दे यह तेरा सर्वस्व लेलेगा बलि ने एक न मान कर दान कर ही दिया और कहा मापो तदनन्तर उस बाल ब्रह्मचारी ने तीन पगों से उस के सर्वस्व को मापकर अर्द्धपाद से उसको भी माप पाताल पठाया यहतो हुई कथा

अब सुनो व्यवस्था जो वर्तमान है रात्रीका अभिमानी देवता राजा बलि है, और विद्युत् का अभिमानी देवता इन्द्र है इसी प्रकार सूर्य का अभिमानी देवता विष्णु है, यही सुरेश्वर का परम मित्र है बलि को असुरों का राजा इस अभिप्राय से कथन किया है कि रात्री में ही मनुष्य आसुरी सम्पत्ति से विशेष परिचित हुए हुए प्राणों की गति शीघ्र संचालन करने के निमित्त इन्द्रियों की शिथिलता द्वारा या तो सोते हैं अथवा स्त्रियादि का उपभोग करते हैं योगी प्राणों को निरोध कर अनुभव कर लेता है कि असार संसार और उस के सब ठाठ सामान सुख सम्पत्ति और विषयभोगों की वासना सब जल तरङ्गवत् अस्थिर हैं एक दिन अवश्यमेव इस संसार से प्रस्थान करना है और यह सब ठाट बाठ छोड़ जाना है और यह भी कोई नहीं जान सकता कि किस समय मौत का वारन्ट आजावे।

केवल आत्मा ही अजर अमर है यदि नित्यात्मा इन अनित्य पदार्थों के मोह में फंसा रहा और अपनी वास्तविक उन्नति और भलाई के लिये उसने कुछ यत्न न किया तो यह जीवन ही व्यर्थ हुआ एतादृश संस्कार रूपी भानु जब उदय होता है तब अज्ञान को अथवा अहङ्कार को पाद तले दबा कर नष्ट कर देता है यह तो रहा अध्यात्म दृष्टान्त। अब आधिदैविक सुनो जब अदितिनन्दन आदित्य भगवान भास्कर प्रातःकाल उदय होते हैं तब मानो बालक से परिज्ञात होते हैं और यह दृश्य प्रकृति पर संघटित होने लगता है कि रात्रि के अभिमानी देव से अपने कालक्षेप के लिये स्थान दान लेना चाहते हैं सो ले ही लेते हैं अर्थात् अध ऊर्ध्व विस्तृत किरणों द्वारा बलि के सर्वस्वको नापकर पैरों तले भेज देते हैं यही संक्षेपतः परमेश्वर का निदर्शक दृष्टान्त है, या यों समझो कि विष्णु भगवान् अपने आत्मा सब भूतों में पालन करने वाले ने इस प्रतीयमान्

जगत् को जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति पदों द्वारा जब आक्रमण किया उस समय तीन प्रकार से अपने चरणों को स्थापित किया इन ही विष्णु यज्ञ रूप भगवान् के धूलि युक्त चरणों में यह सब जगत अन्तर्गत है उसे जानो ॥

(१८)

ॐ त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपाऽदाभ्यः अतो धर्माणि धारयन् ॥

(अदाभ्यः) किसी से भी हिंसा किये जाने के अशक्य (गोपा) सब जगत के रक्षा करने वाले (विष्णु) भगवान् (अतो) इन पृथिव्यादि में (धर्माणि) अग्निहोत्रादि धर्मों को (धारयन्) धारण करते हुए (त्रिणि पदा) तीनों पदों से (विचक्रमे) व्याप्त हुए ॥

व्याख्या—विष्णु भगवान् को कोई भी हिंसा करने में समर्थ नहीं वह किसी लोक या देह के संयोग वियोग परिवर्तन द्वारा दुखित नहीं होता क्योंकि वह सब में व्यापक सबका आत्मा है पालन करता है और सर्व का रक्षक ज्ञाता ज्ञान ओंकार स्वरूप ब्रह्म ने पृथ्वी आदि सर्व पदार्थों में अथवा जागृतादि अवस्थाओं में गन्ध काठिन्यतादि गुण धर्मों को धारण करते हुए सर्व को व्याप्त कर दिया अर्थात् दयालु गोपा रक्षक (विष्णु ने (त्रीणि) तीन (पदा) अवस्था (विचक्रमे) नियत किये हैं और उन में व्याप्त है। उस से (धर्माणि) शुभ कर्मों को (धारयन्) धारण करता हुआ रखता है ॥

(१९)

ॐविष्णोकर्माणि पश्यतःयतो व्रतानि पष्यशे इन्द्रस्य युज्य सखा।

(यतः) जिस से (व्रतानि) शुभ कर्मों को (पष्यशे) करते हैं

(विष्णो) विष्णु के (कर्माणि) कर्मों को (पश्यत) देखो (इन्द्रस्य) इन्द्र के (युज्य) योग्य (सखा) मित्र है ॥

व्याख्या—हे जीवो ! व्यापक जगदीश्वर के उत्पत्ति स्थिति प्रलयादि करने को देखो जिस से ये सब व्रत प्रतिज्ञायें और सृष्टि नेम किये जाते हैं वही इस इन्द्र जीवात्मा के योग्य सच्चा मित्र है अर्थात् आधिदैविक में परमेश्वर जीवों को यह कहते हैं कि हे जीवो तुम विष्णु सूर्य के आकर्षण विकर्षण द्वारा उष्ण प्रकाशादि प्रदात्रि शक्ति से चक्षुरादि इन्द्रिय अपने २ व्यापार में प्रवृत होती हैं उस के मित्र सूर्य भगवान् का प्रातःकाल दर्शन करो और उन के अनन्त उपकारों को अवलोकन कर तदनुसार तुम भी वरतो ॥

(२०)

ॐतद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्तिः सूरयः दिवीव चक्षुराततम्।

(सूरयः) विद्वान् जन (विष्णोः) विष्णु भगवान् के (तत्) उस (परमं पदं) उत्कृष्ट स्थान को (आततं) फैले हुए (दिवि इव) प्रकाश के समान अर्थात् प्रकाश के सदृश (चक्षु) आंखों से (सदा) सदैव (पश्यन्ति) देखते हैं ज्ञानी जन विष्णु भगवान् के परम पद को उसी प्रकार ज्ञान दृष्टि से देखते हैं जैसे आकाश को चक्षु ॥

ॐतद्विप्रांशो विपन्यवो जागृवान्स समिन्धते विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥

(विपन्यवः) निष्काम (जागृवान्सः) अप्रमत्त (विप्रांश) ब्राह्मण लोग (समिन्धते) बताते हैं (तत्) वह (यत्) जो (परमं) सर्वोच्च (पदं) स्थान (विष्णोः) निष्काम अप्रमत्त ब्राह्मण लोग उस स्वरूप को उपासते हैं जो विष्णु का परमपद है अर्थात् विष्णु भगवान् का जो परमपद है उस को विशेष करके स्तुति करने वाले प्रमाद

रहित विद्वान् प्रकाश करते हैं ऋग्वेद १, २, ७ ॥

इन मन्त्रों का अभिप्राय विष्णु भगवान् के समर्थन में तात्पर्य है 'विसलृ व्याप्तौ' इस धातु से नुप्रत्यय होकर विष्णु शब्द सिद्ध हुआ है 'वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगत् सविष्णुः' चर अचर रूप जगत् में व्यापक होने से परमात्मा का नाम विष्णु है निघन्टु में सूर्य का नाम भी विष्णु है प्राचीन सभ्यता से युक्त पुरुष सूर्य के अधिष्ठान देवता को समुद्र अर्थात आकाश में शयन करते हुए नाभिकमल सहस्रांशु कमल सुशोभित तदुपरि सिंहासनारुढ चतुर्मुख ब्रह्मा-लक्ष्मी चरणसेवित इत्यादि लक्षण विशिष्ट अर्थात् उपाधि उपहित जान उपासना करते थे तात्पर्य यह है कि विष्णु निराकार सर्व शक्तिमान् सूर्य का आत्मा आकाश मण्डल में सुशोभित अनन्त शेष का पर्यङ्क बनाकर विराजमान हैं अपने किरणों द्वारा समष्टि वायु के अभिमानी पितामह चतुर्मुख ब्रह्मा को उत्पन्न करते हैं। तदनन्तर समष्टि भौतिकाग्नि और विद्युत के अभिमानी देव महादेव ब्रह्मा के मस्तिष्क से उत्पन्न होकर कैलाश पर्यन्त शोभित होते हैं ये तीनों देव वास्तव में एक ही रूप हैं भेद केवल उपाधि का है उपाधि माया शक्ति अर्थात लक्ष्मी का परिणाम और चेतन का विवर्त है उस विष्णु भगवान से अद्भुत रचनारूपी कर्मों को अपने आपे से अभेद देखते हुए सर्व में सब को विष्णु रूप ही जानो जैसा कि वेद में लिखा है—

ॐअतोदेवा अवन्तुनो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्या सप्तधामभिः

यहां से आगे—

आत्मैव देवता सर्वाः यो देवानां नामधाएकेव भवति।

आत्मा ही सारे देवता हैं अपना आत्मा ही सर्व नामों के

धारण करने वाला है इत्यादि श्रुति स्मृतियों के अनुसार हमको देवता आकाश सहित सप्त धामों से रक्षा करें और जहां से सञ्चालन शक्ति द्वारा जगत को विष्णु ने व्याप्त किया है वह विष्णु भगवान् सर्व शक्तियों सहित हमारी रक्षा करें।

विष्णों रराट मसि। हे विष्णों तुम ही इस संसार के मस्तक हो (**विष्णोसनपत्रेस्थ**) हे विष्णों तुम ही सबके ग्रहण करनेवाले हो— **विष्णो स्यूरसि** हे विष्णो तुम ही सुख स्वरूप हो। **वैष्णवमसि, वैष्णवेत्वा,** तुम ही वैष्णव हो आपको मैं प्राप्त हो जाऊं। यही प्रार्थना विष्णु भगवान् से अनन्य प्रेम द्वारा की जाती है और जब अपना सर्वस्व विष्णु भगवान् को अर्पण वेदानुसार किया जावे यथा :—

आयुर्यज्ञेन कल्पताम्, प्राणो यज्ञेन कल्पताम्, चक्षुर्यज्ञेन कल्पताम्, श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम्, मनो यज्ञेन कल्पताम्, वाग् यज्ञेन कल्पताम्, आत्मा यज्ञेन कल्पताम्, ब्रह्म यज्ञेन, ज्योति र्यज्ञेन स्व र्यज्ञेन यज्ञो यज्ञेन यज्ञो वै विष्णुः।

इस मन्त्र से यज्ञ विष्णु का नाम है भावार्थ यह है कि विष्णु के लिये आयु प्राण चक्षु श्रोत्र मन वाणी सहित अपने आप को अर्पण करदो वेद रूपी धन ज्योति और अपना सर्व सुख परमात्मा के निमित्त समझो और विष्णु के लिये अपने आप को उसकी प्रेम भक्ति रूपी ज्ञानाग्नि में इस प्रकार डालदो जिस प्रकार अग्नि में आहुति। पुनः आयु को विष्णु से प्राण को विष्णु से चक्षु विष्णु से श्रोत्र विष्णु से वाग् विष्णु से मन विष्णु से अभेद

समझो उसको अपना आप बार २ चिन्तन करो वही वेद और वह, स्वयं ज्योति सुख स्वरूप है उस अपने जीवनाधार प्राणपति विष्णु के लिये अपने आपको दे दो और उसकी इच्छाऽनुसार चलना आरम्भ करदो वह स्वयं ही तुम्हारे पास आजावेंगे जिस प्रकार कि एक साधारण पुरुष चक्रवर्ति सम्राट् के दर्शन करना अर्थात् समीप में जाकर मिलना चाहता था और वह सब लोगों को पूछने लगा कि कोई मुझ को ऐसी विधि कथन करें कि जिसके द्वारा मैं महाराज के दर्शन कर कृतार्थ हो जाऊं परन्तु उसको कोई तो यह कहने लगा कि महाराज से तो महान् पुरुष ही मिल सकते हैं तू नहीं मिल सकता और कोई कहता था कि भाई अब कभी महाराज पर्यटन करने निकलें तब उनको देखना परन्तु तेरा देखना तब भी कठिन वरञ्च असम्भव जैसा प्रतीत होता है, यह श्रवण कर राज-भक्त अत्यन्त व्याकुल चित्त से अतीव व्याकुल हो कर बोला कि हे परमेश्वर ! अब मुझको कोई ऐसा गुरु प्राप्त हो जाय जो मुझको राजा के दर्शन करावे तो वह कहे सो ही मैं करूं इतने में एक सन्यासी महात्मा वहां आ निकले और उस से बोले भक्त तूं इतना व्याकुल क्यों है वह बोला महाराज मैं तुम्हारी शरण हूं आप जो कुछ आज्ञा करें मैं उसको सच्ची प्रीति और दृढ़ विश्वास पूर्वक करूंगा इतना श्रवण कर महात्मा यह राग अलापने लगे।

एक भरोसा एक बल एक आस विश्वास ।
स्वान्ति सलिल गुरु चरण हैं चात्रिक तुलसीदास ।
उत्तम और चण्डाल घर जहां दीपक उजियार
तुलसी मते पतंग के सभी जोति इकसार ॥
नीच २ सब तरगये सन्त चरण लौलीन ।

जाति के अभिमान से डूबे बहुत कुलीन ॥
सोना काई ना लगे लोहा घुण नहीं खाय ।
बुरा भला जो गुरु भगत् कबहु नरक नहीं जाय ॥
मकरी उतरे तारसे पुन गह चढत जो तार ।
जाका जासो मन रम्यो पहुंचत लगे न बार ॥

यह कह कर महात्मा बोले बच्चा ! तेरे दर्शन की सच्ची प्रीति है और बचन पर विश्वास है तो मैं कहता हूं सोई तूं कर जो गुरु बचन को ही मानते हैं उनका सर्व कार्य मोक्ष पर्यन्त स्वतः सिद्ध होने लगता है । राजा के दुर्ग पर जहां ऊंची पताका और शतघ्नी आदि चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं तात्पर्य यह है कि उस से महात्मा ने कहा कि राजा के दुर्ग की खाई खुद रही है और उनमें बहुत से मजदूर अर्थात् श्रमजीवी काम कर रहे हैं तूं भी उनमें काम करने लगजा और नौकरी कुछ न ले सायं प्रातःकाल अत्यन्त श्रम कर मध्यान्ह में भिक्षा से क्षुधानिवृत्ति कर लेना और चाहे कोई कुछ कहे । वेतन कुछ न लेना अपना कर्तव्य समझ राजभक्ति करना यदि हमारे इस वचन के अनुसार तूं करेगा तो राजा तेरे दर्शन करने को स्वयं आवेंगे ।

वह भी तुरन्त महात्मा गुरु के बचन पर दृढ़ विश्वास कर श्रमजीवियों में जाकर श्रम करने लगा, करते २ सूर्यास्त समय आन उपस्थित हुआ तब ठेकेदार सर्व श्रमजीवियों को वेतन विभक्त करने लगा तब उसकी भी बारी आई तब उसको भी कहा तैंने आज बहुत अच्छा कार्य किया है यह लो अपना वेतन और चले जाओ अपने घरको वह बोला कि मैं नौकरी कदापि काल नहीं लेनेका चाहे प्राण भले ही निकल जाओ, यही

मेरे गुरुकी आज्ञा है कि राजाकी सेवा करना मेरा धर्म और कर्तव्य कर्म है यह कह कर वह भी शयनार्थ गमन कर गया पुनः प्रातः काल आकर अपना कार्य करने लगा, और प्रेम पूर्वक दिन व्यतीत किया फिर भी उसको बहुतेरा कहा परन्तु उसने वेतन स्वीकार कुछ भी न किया और सब से विशेष कार्य करता रहा। दिन प्रति दिन उसके निर्लोभ निष्काम कर्म की महिमा सारे नगर के नर नारियों में होने लगी वरञ्च राज्य सभा में भी एक कर्मचारी ने महाराज से कहा कि महाराज एक ऐसा पुरुष श्रमजीवियों में आकर नौकर हुआ है कि वह कुछ वेतन न ले सब से विशेष कार्य करता है और भिक्षा से अपना निर्वाह करते हुए उसको दस बारह दिन व्यतीत हो चुके हैं और श्रम अधिष्ठाता उनको कह कर बैठ रहे परन्तु उसने कुछ भी वेतन न लेते हुए बार २ यही कहता है कि राजा की सेवा करना मेरा धर्म है राजा उसकी यह राज भक्ति श्रवण कर तुरन्त ही कर्मचारियों को आज्ञा देते भये चलो हम भी उस पुरुष के दर्शन करें जो निष्काम हमारे निमित्त इतना श्रम करता है निदान राजा राज्य मंत्री सर्व राजकर्मचारी सभासदों सहित उस पुरुष के देखने के लिये आये उनको चल कर आये हुए देख सर्व हाथ जोड़ इतस्ततः भयभीत खड़े होगये और शनै २ कहने लगे कि महाराज आज तुम्हें देखने को आये हैं, इतने ही में महाराज पास आकर बोले, कि हम तुम पर बड़े प्रसन्न हुए तुम इच्छा हो सो मांगो हम देने को तत्पर हैं तब तो वह पुरुष अत्यन्त प्रसन्न हो कर गुरु के चरणों में ध्यान लगा उनके वचन में निमग्न हो कर गुरु का रूप होता हुआ प्रेम में विह्वल होकर बोला कि महाराज अब आपके दर्शन हो गए मुझे तो बहुत काल से आप के दर्शन की अभिलाषा थी बहुतेरा श्रम किया परन्तु अकृतकार्यता

ही रही, और कोई मुझको सद्गुरु नहीं मिले थे जो कुछ मिले थे उनमें से कोई तो कहता था कि धन और विद्या से मान होता है उसी को महाराज दर्शन देते हैं, सो ऐसे तो अब मुझको सब कुछ देने को तत्पर हो रहे हैं ऐसे तो मंत्री आदि किसी सभ्य पुरुष को कदाचित् देने को उद्यत भी न हुए होंगे अब मैं गुरु की शरण को प्राप्त हो कर बड़े महाराज से मिलूंगा और बिना गुरु भक्ति के अतिरिक्त मुझे कुछ आवश्यक्ता नही है जिनके वचन को मानने से एक पक्ष के अन्तर्गत कहां तो मैं दर्शन करना चाहता था और कहां आप मेरे जैसे अधम के दर्शन के लिये आये आहा क्या ही सद्-गुरु का वचन है, मन ने की गत कही न जाय जो कहेपीछे पछताय गुरु के शब्द को जो विश्वास से कर ग्रहण करता है उसकी अपार गति होती है जो उसकी अब्धि बांधता है वह पीछे पछताता ही रहता है। दोहे:—

गुरु को कीजे दण्डवत् कोटि २ परणाम।
कीट न जाने भृङ्ग को यों गुरु करि आपमान॥
कबीरा हरि के रूठते गुरु के शरणे जाय।
कहे कबीर गुरु रूठते हरि नहीं होत सहाय॥
गुरु मानुष कर जानते ते नर कहिये अंध।
होंय दुखी संसार में आगे यम का फंद॥
गुरु हैं बड़े गोविन्द ते मन में देख विचार।
हरि सिर जेते बार है गुरु सिर जे ते पार॥
गुरु से ज्ञान जो लीजिये शीश दीजिये दान।
बहुतक भौंदु बह गए राखि जीव अभिमान॥

गुरु की आज्ञा आवहि गुरु की आज्ञा जाय।
कहै कबीर सो सन्त है आवागमन नशाय॥
लच्च कोस जो गुरु बसैं दीजे सुरत पठाय।
शब्द तुरीय सवार हो क्षण आवे क्षण जाय॥
निज मन तो नीचा किया चरण कमल की ओर।
कहें कबीर गुरुदेव बिन नज़र न आवे और॥
सत गुरु महमि अनन्त है अनन्त किया उपकार।
लोचन अनन्त उभारिया अनन्त दिखावन हार॥
सत् गुरु हम सों रीझ कर कहियो एक प्रसङ्ग।
वर्षे बादल प्रेम को भीज गयो सब अङ्ग॥
सत् गुरु मारा तान के शब्द सुरङ्गी बान।
मेरा मारा फिर जीवे तो हाथ न गहूं कमान॥
जा का गुरु है आँधरा चेला खरा निरन्ध।
अंधे को अंधा मिला परा काल के फन्द॥
माई मूंडूं उस गुरु की जाते भरम न जाय।
आपु न बूड़ा धार में चेला दिया बहाय॥
गुरु गुरु में भेद है गुरु गुरु में भाव।
सोई गुरु नित बन्दिये शब्द बतावें दाव॥
कन फूका गुरु हद का बेहद का गुरु और।
बेहद का गुरु जब मिले तो लगे ठिकाना ठौर॥
गुरु नाम है गम्य का शिष्य सीखले सोय।

बिन पदवी मरजाद बिन गुरु शिष्य न होय ॥
जा का गुरु है गिरही चेला गिरही होय।
कीच २ को धोवते दाग न छूटे कोय ॥
झूठे गुरु की पक्ष को तज तन कीजे बार।
पार न पावे शब्द का भरमें बारंबार ॥
जो निगुरा सुमरण करे दिन में सौ सौ बार।
नगरनायका शत करे जरे कौन की लार ॥
गुरुबिन अहनिश नाम ले नहीं सन्त का भाव।
कहें कबीर ता दास का परे न पूरा दाव ॥
गर्भ योगेश्वर गुरु बिना लागे हर की सेव।
कहें कबीर बैकुंठते फेर दिया शुकदेव ॥
गुरु बिन माला फेरते गुरु बिन देते दान।
गुरु बिन दान हराम है जा पूछो वेद पुरान ॥

इत्यादि वचनों के अनुसार राजा के सहित सब के सब गुरु के वचनों पर विश्वास करने लगे और वह पुरुष अपने गुरु को प्राप्त हो कर गुरु सहित परमेश्वर स्वरूप हो गया।

(२२)

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्यजात पतिरेक आसीत्।
सदाधार पृथिवीं द्यामुते मां कस्मैदेवाय हविषा विधेम ॥

ऋग्वेद मं० १० सूक्त १२१

(हिरण्य) ज्योति (गर्भः) अन्तर (समवर्तत) था (अग्रे) आदि

में (भूतस्य) सृष्टि का (जातः) साक्षात् (पतिः) स्वामी (आसीत) था (एक) केवल (स) वह (दाधार) रखता है (पृथिवीं) भूमि को (द्यां) आकाश को (उत) और (इमां) इसको (कस्मै) सुख स्वरूप को (देवाय) ईश्वर को (हविषा) भक्ति से (विधेम) पूजें ॥

हिरण्यगर्भ परमेश्वर जिसकी सामर्थ्य में ज्योतिमान् लोक हैं आदि से वर्तमान हैं, केवल वही सृष्टि का साक्षात् स्वामी है, वह पृथिवी आकाश और इस दृश्यमान जगत् को धारण कर रहा है हमें सुख स्वरूप परमेश्वर को भक्ति से पूजना चाहिये।

व्याख्या—"हिरण्यं वै ज्योति हिरण्यं वै विज्ञानं ज्योतिर्विज्ञानं स्वरूपं यस्य स हिरण्यगर्भः" ज्योति को और विज्ञान को हिरण्य कहते हैं ये हों अन्तर जिसके अथवा ज्ञान स्वरूप और ज्योतियों का ज्योति होने से परमेश्वर का नाम हिरण्यगर्भ है सो जो हिरण्य-गर्भ सूत्रात्मा सब देवों में महान् जैसा कि भगवान् कृष्ण कहते हैं।

हिरण्यगर्भो देवानां मन्त्राणां प्रणवः स्त्रिवृतः।
अक्षराणामकारोस्मि पदानि छन्दसामहम् ॥

देवों में हिरण्यगर्भ मैं हूं, मंत्रों में ओंकार मैं हूं, अक्षरों में अकार मैं हूं, छन्दों में गायत्री मैं हूं, वह सूत्रात्मा इस प्रपञ्च की उत्पत्ति से पूर्व विद्यमान् था और जो उत्पन्न हो कर भी सब विकार जात ब्रह्माण्ड का ईश्वर था वह इस विस्तीर्ण पृथिवी और आकाश को धारण करता है ऐसे सुख स्वरूप परमात्मा की हवि प्रदान द्वारा हम परिचर्या करें। हम उस सुख स्वरूप परमेश्वर की भक्ति नमस्कारों द्वारा करें जो परमेश्वर सब संसार की आदि और अन्त में अनन्त अपार है, जो प्रकाश अन्धकार को अपने स्वस्वरूप में

धारण करता है यही एक बड़ा आश्चर्य है कि प्रकाश और अन्धकार एक ही स्थान में किस प्रकार रह सकते हैं, परन्तु वह अनन्त अपार जिसमें एक दो की संकलना अर्थात् कल्पना ही नहीं हो सकती उस अनन्त अपार सुखस्वरूप अपने आपे में हम समा जायं यही भिक्षा या प्रार्थना हम परमेश्वर से सदैव करते रहें, यही परम पिता परमात्मा का सर्व जीवों को अत्यन्त हितकर महान् उपदेश है और यही मनुष्य जन्म का मुख्य उद्देश्य है ॥

(२३)

ॐ यः आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते । प्रशिषं यस्य देवाः यस्य छाया मृतं यस्य मृत्यु कस्मै देवाय हविषां विधेम ॥

(यः) जो (आत्मदा) ब्रह्मविद्या का दाता अर्थात् आत्म दाता (बलदा) सम्पूर्ण बलदाता (यस्य) जिसको अथवा जिसकी (विश्व) सब लोग (उपासते) मानते हैं अर्थात् उपासना करते हैं (प्रशिषं) आज्ञा को (देवाः) देवता लोग (अस्य) इसका वा इसकी (छाया) कृपा वा शरण (अमृतं) मोक्ष अर्थात् अमर कारक है तद्व्यतिरिक्त मृत्यु मरना (कस्मै) सुख स्वरूप को (देवाय) ईश्वर को (हविषा) भक्ति से (विधेम) पूजें ।

व्याख्या—इस मंत्र में परमपिता परमेश्वर को आत्मा के देने वाला कथन किया है हम अपने वाचक वृन्दों को सूचित करते हैं कि आत्मा क्या पदार्थ और उसकी उपलब्धि किस प्रकार होती है हम आख्यायिका द्वारा सविस्तर वर्णन करते हैं, एक समय नारद सनत् कुमार के समीप जाकर बोले कि हे भगवन् ! आप मुझको आत्मा का उपदेश करें यद्यपि मैं आगे भी बहुत कुछ विद्यायें पढ़ा

हूं, परन्तु आत्मा से अनभिज्ञ हूं। परम पूज्य जगद् गुरु सनत्-कुमार बोले कि जब शिष्य आत्मवेत्ता बनना चाहता हो तो तब गुरु के प्रति जो कुछ जानता हो वह सर्व ही निवेदन करे इस लिये जो कुछ आप जानते हैं सो कथन करें उससे आप मैं आपको उपदेश करूंगा, वह प्रसिद्ध नारद बोले हे भगवन् ! ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद को जानता हूं, पांचवें इतिहास और पुराण तथा उपनिषद् शास्त्रकला कौशलादि गणितविद्या चिन्हों द्वारा वृष्टि आदिका ज्ञान, गाने की विद्या, वाणियों का ज्ञान, यंत्र निर्माण, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, देवविद्या, निरुक्त, ब्रह्मविद्या, आध्यात्मिकविद्या भूतविद्या, क्षत्रत्रविद्या, तत्वोंकी विद्या, शस्त्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पों के विषों का ज्ञान तथा उनके उपायों की विद्या, नृत्य गीत बाद्यादि विद्या प्राकृत जनों की विद्या इत्यादि मैं इन सब विद्याओं को जानता हूं

'सोऽहं भगवो मंत्रविदे वास्मि, नात्म वित्'

हे भगवन ! वह मैं मंत्र वेत्ता ही हूं आत्मवित् नहीं। 'मे श्रुतं' मैंने सुना है 'एव' कि 'आत्मविच्छोकं तरति' आत्मवित् शोक को तरता है, सो हे भगवन् ! (सोऽहं) वह मैं (शोचामि) शोचता हूं इसलिये शोक युक्त होने से मैं आत्मवित् नहीं।

तं मा भगवान् शोकस्य पारं तारयतु इति

आप मुझ शोकित को पार उतारें यह विनय है सनत् कुमार बोले

'इतवै किञ्चैतद्ध्यगीष्ठा नामै वैतत्'

'वै' निश्चय करके 'इतकिंच' जो कुछ 'एतत्' इस विज्ञान का आप ने 'अध्यगीष्ठा' अध्ययन किया है 'एतद् नामेव' यह सब नाम ही है सुन 'नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेद:सामवेद:अथर्वण चतुर्थ:

इतिहास पुराणं पञ्चमोवेदानांवेद पित्र्योराशिर्दैवोनिधिर्वाको वाक्यमेकायनं देवविद्या ब्रह्मविद्या भूतविद्या क्षत्रविद्या नक्षत्रविद्या सर्पदेव जनविद्या नामै वैतन्नामो पास्वेति" हे नारद निश्चय करके ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद तथा चतुर्थ अथर्ववेद और पञ्चम इतिहास पुराण उपनिषद् शास्त्र पित्र राशि दैव निधि वाक्यो वाक्य एकापन देवविद्या ब्रह्मविद्या भूतविद्या क्षत्रविद्या नक्षत्रविद्या और सर्वदेव जनविद्या यह सब नाम ही हैं नाम की उपासना करो वेद में यही लिखा है।

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्यनाम महद्यशः ॥

उसकी कोई प्रतिमा अथवा मांपक साधन नहीं है परन्तु उस का नाम बड़े यश वाला है जो पुरुष नाम को महान् समझ कर उपासता है वह जहां तक नाम की गति है वहां तक स्वेच्छाचारी हो जाता है, "योनाम ब्रह्मेत्युपासते" यह श्रवण कर नारद ने एकान्त में मनन और निदिध्यासन द्वारा नाम को साक्षात् कर अपने परमपूज्य गुरु सनकादिक के समीप पुनः उपस्थित हो कर बोले कि हे भगवन् नाम से भी बड़ा कोई पदार्थ है सनतकुमार बोले कि हां नाम से भी बड़ी बाणी है। उक्त सर्व पदार्थ बाणी के अन्तर्गत आजाते हैं और द्यौ लोक पृथिवी लोक वायु लोक आकाश जल तेज देव और मनुष्य पशु और पक्षि तृण वनस्पति हिंसक जीव कीट पतङ्गादि क्षुद्र जन्तु धर्म और अधर्म सत्यासत्य साधू और असाधु हृदय को प्रिय और अप्रिय इन सब को बाणी ही जितलाती है निश्चय कर जो बाणी न होती तो न धर्म न अधर्म न सत्य न असत्य न अच्छा न बुरा न हृदय प्रिय न अप्रिय जानाजाता बाणी ही इन सब को विज्ञापित करती है इस लिये हे नारद यहां से आगे तूं बाणी की उपासना कर।

सयो वाचं ब्रह्मेत्युपासते यावद्वाचो गतं तत्रास्य यथा काम चारो भवति ॥

वह पुरुष जो वाणी को श्रेष्ठ मान कर उस की उपासना करता है वह जहां तक वाणी की गति है वहां तक वह स्वेच्छाचारी होता है जो वाणी की उपासना करता है दो वार पाठ उक्त अर्थ की दृढ़ता के लिये आया है नारद बोला हे भगवन् वाणी से भी कोई बड़ा है देवऋषि बोले हां बड़ा है नारद बोले आप मेरे प्रति कथन करें सनत्कुमार बोले, "मनो वाव वाचो भूय" वाणी से मन ही श्रेष्ठ है जैसे मुट्ठी दो आमलों दो बेरों अथवा दो बहेड़ों को अनुभव करती है अर्थात अपने अन्दर रखती है वैसे ही मन वाणी और नाम इन दोनों को अनुभव करता है कोई पुरुष जब मन से मनन करता है कि मंत्रों का अध्ययन करूं तत्पश्चात् पढ़ता है। कर्मों को पश्चात् करता है पुत्रों और पशुओं की इच्छा करता है पश्चात् यत्न करता है जब पुरुष इस लोक तथा परलोक की इच्छा करता है पश्चात् यत्न करता है।

मनोह्यात्मा मनोहि लोका मनो हि ब्रह्म मन उपास्स्वेति।

निश्चय से मन ही आत्मा मन ही लोक और मन ही बड़ा है इसलिये हे नारद मन की उपासना कर।

स एव यो मनो ब्रह्मेत्युपासते यावन्मनसो गतंतत्रास्य यथा काम चारो भवति।

वह जो पुरुष मनको ब्रह्म समझ कर उपासना करता है जहां तक मन की गति है वहां तक वह पुरुष कामचारी होता है नारद बोला हे भगवन् मन से भी कोई बड़ा है ऋषिवर बोले कि हां मन

से भी निश्चय करके अधिक है नारद बोले वह भी मेरे लिये कथन करें गुरु बोले "संकल्पो वाव मनसो भूयान्" संकल्प ही मन से बड़ा है क्यों कि निश्चय कर जब पुरुष संकल्प करता है तदनन्तर मनन करता है पुनः वाणी से कथन करके उसी वाक्य को नाम द्वारा उच्चारण करता है नाम में मन्त्र एक होते हैं और मन्त्रों में कर्म एक होते हैं निश्चय कर ये जो मनादि संकल्प के आश्रय हैं संकल्प स्वरूप हैं संकल्प में प्रतिष्ठित हैं द्यौ लोक अर्थात प्रकाश लोक तथा पृथिवी अन्धकार लोक संकल्प वाले हैं वायु और आकाश संकल्प से ही प्रतीत होते हैं जल और तेज संकल्प से जाने जाते हैं इन्हों के संकल्प निमित्त वर्षा संकल्प करती है वृष्टि के संकल्प निमित्त अन्न संकल्प करता है अन्न के संकल्प निमित्त प्राण संकल्प करते हैं प्राण के संकल्प निमित्त मंत्र संकल्प करते हैं मन्त्रों के संकल्प के लिये कर्म संकल्प करते हैं अर्थात् संकल्प पूर्वक कर्म किये जाते हैं कर्मों के संकल्प के निमित्त लोक संकल्प करते हैं लोक के संकल्प निमित्त सब संकल्प करते हैं, वह यह संकल्प है कि उपासना कर।

सयः सङ्कल्पं ब्रह्मेत्युपासते यावत्सङ्कल्पस्य गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति।

वह पुरुष जो संकल्प को बड़ा समझ उपासना करता है निश्चय कर वह साध्र्ययुक्त उत्तम लोकों को प्राप्त होता है दृढ़ संकल्प पुरुष दृढ़ अटल अवस्थाओं को प्राप्त होता है प्रतिष्ठित पुरुष प्रतिष्ठित लोकों को क्लेश रहित होकर सुखी लोकों को प्राप्त होता है। और जहां तक संकल्प की गति है वहां तक यह स्वेच्छाचारी होता है नारद बोला हे भगवन् संकल्प से भी कोई बड़ा है भगवान् सनत्

कुमार बोले। हां संकल्प से भी बड़ा है तो हे भगवन्! करुणा वृत्ति कर सो भी मेरे प्रति कथन करें। सनत्कुमार बोले—

श्रूयताम् चित्तं वाव सङ्कल्पाद्भूयः।

चित्त ही सङ्कल्प से बड़ा है निश्चयकर जब चिन्तन करता है तदनन्तर संकल्प करता है पश्चात् मनन करता है तब वाणी को प्रेरता है उस वाणी को नाम निमित्तिक प्रेरता है नाम में मंत्र एक होते हैं मंत्रों में कर्म एक होते हैं निश्चय से यह संकल्पादि चित्तके आश्रित हैं चित्त स्वरूप हैं चित्त में ही प्रतिष्ठित हैं इस कारण यद्यपि कोई पुरुष विविध ज्ञाता हो परन्तु स्थिर चित्त न हो तो इसको लोग कहते हैं कि यह नहीं है अर्थात् न होने के बराबर है, यथा—

यद्यपि बहुविध चित्तो भवति नायमस्तीति एनमाहुः
यदयं वेद यद्वान् विद्वान्नेत्थ मचित्तः स्यात्।

यदि यह शास्त्रों का ज्ञाता होता तो ऐसा अस्थिर चित न होता,

अथ यद्वल्प चित्तवान् भवति।

और यदि कोई थोड़ा जानने वाला अच्छे चित्त वाला होता है तो

तस्मा एवोत सुश्रुषन्ते।

उस पुरुष का सब सत्कार करते हैं उस सबका चित्तही आश्रय 'चित्तमात्मा' चित्त ही आत्मा और चित्त ही प्रतिष्ठा है। इस कारण हे नारद तू चित्त की उपासना कर जो चित्त को बड़ा समझकर चित्त से उपासना करता है वह पुरुष निश्चय कर दृढ़ अटलता को प्राप्त होता है प्रतिष्ठित होकर प्रतिष्ठित अवस्था वाला होता है और क्लेश रहित सुखी लोकों में प्राप्त होता है।

यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपासते यावच्चित्तस्यगतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति

नारद बोला भगवन् कोई चित्त से भी बड़ा है ? सनत्कुमार बोले हां। नारद बोला हे दया सागर सो भी कथन करें। भगवान् सनत कुमार बोले—

"ध्यानं वाव चित्ता द्भूय" ध्यान चित्त से बड़ा है।

ध्यानं निर्विषयं मनः तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्।

पृथिवी ध्यान करती है, अन्तरिक्ष ध्यान करता है, द्यौ लोक ध्यानावस्थित सा प्रतीत होता है, जल ध्यान करते हैं, पर्वत ध्यानावस्थित हैं, देवता मनुष्य ध्यानावस्थित प्रतीत होते हैं इससे मनुष्यों के मध्य जो पुरुष इस लोक में महत्व को प्राप्त होते हैं वेही निश्चय से ध्यान के एक पाद की न्याईं हैं और जो अल्प हैं वे कलह करने वाले दूसरों के दोषों को देखने वाले और परोक्ष में निन्दा करने वाले होते हैं येही नीच पुरुष हैं—

यथा—

अथ ये ऽल्पाः कलहिनः पिशुना उपवादिनस्ते,

और जो मनुष्यों के प्रभु होते हैं वे निश्चय करके ध्यान के प्रभाव से ही होते हैं इस लिये हे नारद ध्यान की उपासना कर।

सयोध्यानंब्रह्मेत्युपासते यावत्ध्यानस्य गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति

जो पुरुष ध्यान को ब्रह्म समझ कर उपासना करता है जहां तक ध्यान की गति है वहां तक वह स्वेच्छाचारी होता है, नारद बोला "भगवोध्यानाद्भूय इति" ध्यान से भी कोई बड़ा है ? सनत्

कुमार बोले "ध्यानाद्वाव भूयो ऽस्तीति" हां ध्यान से भी बड़ा है- नारद बोला "तन्मे भगवान् ब्रवीतु इति" आप मेरे प्रति कथन करें "विज्ञानं वाव ध्यानाद्भूय इति" विज्ञान ही ध्यान से बड़ा है क्यों कि निश्चय कर विज्ञान से ही पुरुष वेद इतिहास पुराणादि पूर्वोक्त सब विद्यायें द्यौलोक से क्षुद्र जन्तु पर्यन्त तत्व भी विज्ञान द्वारा ही जाना जाता है धर्माधर्म सत्यासत्य साध्व साधु हृदय प्रिय अप्रिय रस अन्न यह लोक और परलोक इन सब को पुरुष विज्ञान से ही जानता है इस लिये हे नारद विज्ञान की उपासना कर। जो पुरुष विज्ञान को बड़ा समझ कर उपासना करता है वह निश्चय करके ज्ञानवान् होकर ज्ञान वाले लोकों को प्राप्त होता है।

यावद्विज्ञानस्य गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति।

नारद बोला हे भगवान् विज्ञान से भी कोई बड़ा है, हाँ हाँ बड़ा है भगवान् वह भी कहो—

सनत्कुमार बोले।

बलंवाव विज्ञानाद्भूयोऽपि ह।

निश्चय करके बल विज्ञान से भी बड़ा है क्योंकि—

शतं विज्ञानवता मेको बलवाना कम्पयते।

शतशः विज्ञानी पुरुषों को एक बलवान कम्पायमान् कर देता है, "सयदा बलि भवति" वह पुरुष जब बलि होता है (अथोत्थाता भवति) तब कार्य करने को उद्यत होता है "उत्तिष्ठन् परिचिता भवति" सेवा करने के योग्य होता है सेवा करता हुआ समीपता को पाता है समीपता से द्रष्टा होता है पुनः श्रोता होता है मन्ता होता है बोद्धा होता है करता होता है विज्ञाता होता है।

बलेन वै पृथिवी तिष्ठति बलेनान्तरिक्षम् बले नद्यौ र्बले न पर्वता बले न देव मनुष्या बले न पशव वयांसि ॥

बल से ही भूलोक अन्तरिक्ष द्यौ लोक पर्वत देव मनुष्य पशु पक्षि तृण बनस्पति हिंसक पशु और कीट पतंग पिपीलिकादि सब जीव जन्तु बल से ही स्थित हैं बल से ही सब लोक लोकान्तर स्थित हैं इस लिये हे नारद बल की उपासना कर।

सयो बलं ब्रह्मेत्युपासते यावद्बलस्यगतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति ॥

नारद बोला "भगवो बलाद्भूय इति" हे भगवान् बल से भी कोई बड़ा है ? हां है भगवान् सो भी कहो सनकादिक बोले "अन्नं वाव बलाद्भूय" अन्न ही बल से बड़ा है यद्यपि कोई दास रात्रि अन्न न खाय तो मर जाय अथवा प्रसिद्ध बलिष्ट होने के कारण न भी मरे तदपि अद्दष्टा अश्रोता अमन्ता अबोद्धा अकर्ता अविज्ञाता अवश्य हो जाता है और जब अन्न की प्राप्ति हो जाती है तब द्रष्टा श्रोता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञाता हो जाता है इस लिये हे नारद अन्न की उपासना कर।

योऽन्नं ब्रह्मेत्युपासते यावदन्नस्य गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति ॥

जो अन्न को ब्रह्म समझता है वह निश्चय से अन्न पान वाले लोकों को प्राप्त होता है, नारद बोले अन्न से भी कोई बड़ा है हां जल अन्न से भी बड़ा है जब सुवृष्टि होती है तब ही प्रजा सुखी होती है न रोग को न दुःखों को देखता है वह सर्व को निश्चय पूर्वक ब्रह्म ही देखता है इस कारण सर्व प्रकार से सर्व को ही प्राप्त होता है।

स एकधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा
सप्तधा नवधा चैव पुनश्चैकादश स्मृतः
शतं च दश चैकश्च सहस्राणि च विंशतिः ॥

वह ब्रह्म अथवा ब्रह्मवित् एक होता है अथवा एक प्रकार का है पश्चात् तीन प्रकार का होता है अर्थात् जीव ब्रह्म प्रकृति इन तीनों प्रकार से है इसी प्रकार पांच सात नौ प्रकार से होता है अथवा है और फिर एकादश जाना जाता है अथवा कहलाता है सौ दस एक सहस्र और बीस होता है।

आहार शुद्धौ सत्व शुद्धिः सत्व शुद्धौ ध्रुवास्मृतिः स्मृति लम्भे सर्व ग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।

आहार के शुद्ध होने पर अन्तःकरण की शुद्धि होती है और अन्तःकरण की शुद्धि से अपने आप अपार सुख स्वरूप की स्मृति अटल हो जाती है। स्मृति अटल हो जाने पर हृदय की सर्व ग्रन्थियों का नाश हो जाता है "तस्मै मृदित कषायाय तमसस्पारं दर्शयति भगवान् सनत्कुमार मारस्तं स्कन्द इत्याचक्षते" भगवान् सनत्कुमार ने शुद्धान्तः करण उस नारद को अज्ञान रूप अन्धकार से अपार परमात्म तत्व को दर्शाया उस सनत्कुमार को स्कन्द नाम से कथन करते हैं, इस आख्यायिका से विदित हुआ होगा कि नारद बहुविध होने पर भी आत्मा से अनभिज्ञ था तब उक्त मन्त्रानुसार परमात्मा ने गुरु द्वारा आत्मा की प्राप्ति की, यद्यपि आत्मा परमात्मा नित्य प्राप्त है तदपि अज्ञात होने के कारण नित्य प्राप्ति की प्राप्ति ही ज्ञान सर्व शास्त्रकारों ने मानी है इसी लिये वेद में "यो आत्मदा" जो परमेश्वर गुरु द्वारा आत्मा के प्राप्ति करने वाला अथवा अपने स्व स्वरूप को प्रकाशित करने वाला है।

परमपूज्य भगवान व्यासजी वेदान्त दर्शन में कथन करते हैं "आत्म शब्दाच" आत्म शब्द से पुरुष का ग्रहण है और अनात्म शब्द से पुरुष से अतिरिक्त अनात्म है।

एष सर्वेषु भूतेषु गूढ़ात्मा न प्रकाशते।

ये सब भूतों में गुप्तात्मा बिना ईश्वरानुग्रह अर्थात् गुरु वेदान्त वाक्य पर अत्यन्त विश्वास से अतिरिक्त प्रकाशित नहीं होता।

दृश्यते त्वग्रया बुद्धया सुक्ष्मया सूक्ष्म दर्शिभिः।

सूक्ष्म से अति सूक्ष्म कुशाग्र बुद्धि द्वारा देखा जाता है उसको अनात्म पदार्थ दृष्टिगत नहीं होता जिस प्रकार पट के तन्तु द्रष्टा को पट की अस्ति ज्ञात नहीं होती उसी प्रकार खांड के खिलौने में खांड देखने वाले को अस्ति अश्वादि की प्रतीती नहीं होती है जिसको देहात्म ज्ञानवत् आत्मा का ज्ञान साक्षात्कार हो गया है उस को सब कुछ आत्मा अपना आपा ही सब कुछ विदित होता है जैसा कि एक महात्मा सूक्ष्म दृष्टि द्वारा समाधि स्थिर हो कर पुनः कथन करता है—

किंकरोमि क्वगच्छामि किंग्रह्णामि त्यजामि किम्।
आत्मना पूरितं विश्वं महाकल्पाम्बुना यथा॥

क्या करूं और कहां जाऊं, क्या छोड़ूं और क्या ग्रहण करूं क्योंकि यह सब आत्मा से ही परिपूर्ण है जैसे जल से प्रलय का समुद्र॥

सवाह्याभ्यन्तरे देहे ह्यध ऊर्ध्वं च दिशु च।
इत आत्मा तथेह्यात्मा नास्त्य नात्ममयं जगत्॥

वही शरीर के वाहर भीतर है नीचे ऊपर सब दिशाओं में

यह वह सब आत्मा है, अनात्म रूप में कुछ नहीं।

न तदस्ति न यत्राहं न तदस्ति न यन्मयि।
किमन्यदभि वाञ्छामि सर्वं संविन्मयं ततम् ॥

वह कुछ नहीं जहां मैं न हूं न वह जो मेरे में न हो अर्थात सब कुछ मैं हूं और सब मेरे में है, यह सब कुछ संविन् मय है। अब मैं किसकी वाञ्छा करूं, कोई दूसरा ही नहीं कोमल हृदय पुरुष ही इसको जानता है जो आत्मा आंख से देखता और कान से सुनता है वह प्राण से प्राण और अपान से खींचता है कबीर साहिब कवि कोमल हृदय यह कथन करते हैं—

शीलवन्त शूर ज्ञान मत अति उदार चित्त होय।
लज्जावान् अति निछलता कोमल हृदय सोय ॥

ज्ञानी सेवक का लक्षण करते हैं—

दयावन्त धरमक ध्वजा धीरजवान् प्रमान।
सन्तोषी सुखदायकरू, सेवक परम सुजान ॥

वही अपने आपे को अपार आनन्द स्वरूप जानेगा और वह राजऋषी ब्रह्मवित् महाराज जनक की तरह अद्वैत आनन्द में निमग्न होकर गर्जता हुआ यह कहता है जैसा कि महाराज जनक वाक्य आप के समीक्षार्थ उपस्थित हैं—

नाहमात्मार्थमिच्छामि गन्धान् घ्राण गतानपि
तस्मान्मे निर्जिता भूमिर्वशे तिष्ठति नित्यदा ॥
नाहमात्मार्थ मिच्छामि रसा नास्येऽपि वर्त्तत:।
आपो मे निर्जिता स्तस्मा द्वशे तिष्ठन्ति नित्यदा ॥

तात्पर्य यह कि राजा जनक कहते हैं मैं अब अपने लिये गन्धों को ग्रहण नहीं करता किन्तु अपना आप समझ कर सब के लिये करता हूं इस हेतु सर्व गन्ध मेरे ही हैं और मेरे ही आधीन हैं मैं उनके नहीं—जब मैंने अपने लिये रसास्वादों को त्याग दिया तो सर्व के रसास्वाद मेरे ही हो गये ।

नाहमात्मार्थं मिच्छामि रूपं ज्योतिश्च चक्षुषः ।
तस्मान्मे निर्जितं ज्योतिर्वशेतिष्ठति नित्यदा ॥

तात्पर्य यह है महाराज कहते हैं कि कारण को वश में कर लेने से कार्य स्वतः सिद्ध वश होता है इस लिये मैंने जब अपने लिये सब का देखना छोड़ दिया तब सर्व रूपतायें मेरी ही बन गईं ।

नाहमात्मार्थं मिच्छामि स्पर्शान् त्वचि गताश्चये ।
तस्मान्मे निर्जितो वायुर्वशे तिष्ठति नित्यदा ॥
नाहमात्मार्थं मिच्छामि शब्दान् श्रोत्र गतानपि ।
तस्मान्मे निर्जिता शब्दा वशे तिष्ठन्ति नित्यदा ॥
नाहमात्मार्थं मिच्छामि मनोनित्यं मनोऽन्तरे ।
मनो मे निर्जितं तस्माद्वशे तिष्ठति सर्वदा ॥

—महाभारते०

अर्थ—मैंने अपने लिये नृत्य गीत वाद्यादि के शब्दों से लेकर और सर्व शब्दों को छोड़ दिया तदनन्तर (अब मैं) ने सब परित्याग कर दिया तब तो सारे ही राग बाजे मेरे ही में बन गये अब मैं अपने लिये कुछ नहीं चाहता अर्थात् अपने आत्मा के लिये किसी भी पदार्थ की इच्छा ही नहीं करता किन्तु अपना आपा सर्व को समझ कर ब्रह्म के लिये इच्छा करता हूं तो देखो ये सब इच्छायें मेरे ही

में हो गई। अर्थात् मेरे आधीन में ही हो गई मैं ही मैं हूं उस तू को तो देश काल पात्र नहीं, ब्रह्मर्षि वामदेव अपना अनुभव प्रकाश करते हैं मनुष्य मानते हैं ब्रह्म विद्या से सब कुछ हो सकते हैं। असम्भव शब्द मूर्खों के कोष में होता है उसे निकालदो एक कहता है ब्रह्म क्या था और क्या ब्रह्म ने विदित कर सब कुछ हो गया ब्रह्मर्षि कहते हैं इसके पूर्व ब्रह्म ही था और है उसने अपने को मैं ही ब्रह्म हूं ऐसा जाना तदनन्तर सर्व कुछ हो गया तत्पश्चात् वह जो जो देवताओं और अविद्या उसकी दूर हुई और जाना कि मैं ही ब्रह्म हूं "अहं ब्रह्मास्मि" के ढोल बजाता हुआ ब्रह्म बन गया तब ही श्रुति माता ने बल पूर्वक सब पुरुषों को कहा है।

ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति।

अर्थ—ब्रह्म के जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है और है भी सही यह महावाक्य यहां से आगे ऋषियों में से जिसका अज्ञान नष्ट हुआ और जान लिया कि मैं ही निश्चय पूर्वक ब्रह्म हूं तब वही ब्रह्म हो गया उसी प्रकार मनुष्यों में से वह यह देखता हुआ वाम देव ऋषि गर्भ से ही बोला कि मैं ही मनु होता भया मैं ही सूर्य यह सब कुछ और मैं ब्रह्म हूं वह यह सब कुछ हो गया जैसा कि निम्न लिखित श्रुतियें प्रकाश करती हैं।

तदाहु यद् ब्रह्म विद्या सर्वं भविष्यन्तो मनुष्याः मन्यन्ते किं तद् ब्रह्मो वेद यस्मात्तत् सर्वम् भवदिति ब्रह्मवा इदम ग्रासीत् तदात्मान मेवावेद अहं ब्रह्मास्मीति। तस्मात्तत् सर्वमभवत् तद् योयो देवानां प्रत्य बुद्धयत स एव तद भवत् तथा ऋषिणां तथा मनुष्याणां तथ्यैतत्

पश्यन् ऋषिर्वामदेवः प्रतिपेदे अहं मनुरभवम् सूर्य श्चेति तदि दमप्येतर्हि एवं वेद अहंब्रह्मास्मि स इदं सर्वं भवति ॥

और भी बृहदारण्यकोपनिषद् प्रथमाध्याय चतुर्थ ब्राह्मण में 'आत्मै वेद मग्रासीत्' सृष्टि से पूर्व यह सब आत्मा ही था।

पुरुष विध सोऽनु वीक्ष्य नान्य दात्मनो अपश्यत् सो ऽहमस्मीत्यग्रे व्याहरत ॥

उस पुरुषाकार आत्मा ने और आलोचन किया तो अपने से भिन्न कुछ न देख कर मैं ही सर्वात्मा सच्चिदानन्द हूं इस प्रकार कथन किया इसी कारण "अहंनामा भवत्" वह अहं नाम वाला हुआ अर्थात् मैं हूं यह नाम होता भया "तस्मादप्येतर्ह्यामंत्रितो हमय मित्येवाग्र उक्त्वा थान्यत् नाम (अन्य) प्रब्रूते" इसी से बुलाया हुआ यह पुरुष भी मैं हूं यह कह कर पश्चात जो इस के अन्य नाम हैं उन को कहता है, 'यदस्य भवति' जो इस का है—

स इत पूर्वोस्मात्सर्व स्मात् सर्वान् पाप्मनः औषत् तस्मात्पुरुषः औषति ॥

जिस कारण इस सम्पूर्ण प्रपञ्च से पूर्व उस आत्मा ने सब पापों को दग्ध किया क्योंकि सृष्टि से पूर्व भी शुद्ध और अपाप विद्ध था और अब भी है और होगा ऐसे जो जानता है उस के पाप नाश होते हैं। "तस्मात्पुरुष" इस कारण से उस को पुरुष कहते हैं

औषति हवै शतं योस्मात्पूर्वो वो भवति य एवं वेद।

जो इस प्रपञ्च से पूर्व पुरुष की भान्ति होने की इच्छा करता हुआ इस आत्मा की शुद्धता को जानता है कि वह मैं ही हूं वह पुरुष ही पाप को दग्ध करके सुखी होता है। वह पुरुष ही पाप को

दग्ध "सो विभेत् तस्मादेकाकी विभेति" सो डरा इस से है। अकेला डरता है, "सहायमीक्षां चक्रे" उस ने आलोचन किया, "यन्मदन्यासित" कि मेरे से भिन्न कुछ नहीं है, "कस्मान्नु विभेमीति" फिर मैं क्यों डरता हूं किस से डरता हूं। तते वास्य भयं भीयाम" वही इस के भय के लिये "कस्माध्य (ध्ये) भेष्यत" किस से डरे क्योंकि जिस से डरता था वह अपने आप ही निकला अब दुसरा है ही नहीं अब भय कहां अब तो निर्भयानन्द हो गये क्योंकि 'द्वितीया द्वै भयं भवति' क्योंकि दूसरे के निश्चय से भय होता है दूसरा ही भय अर्थात् जन्म मरण का कारण है तात्पर्य यह है कि द्वैतवादियों को नर्क का दुःख होता है और अद्वैतवादियों को चन्द्रपुर में परमानन्द होता है "सवै नवै रेमे" पर वह प्रसन्न नहीं हुआ "तस्मादेकाकी न रमते" क्योंकि अकेला प्रसन्न नहीं रहता "स द्वितीय मैच्छत" फिर उस ने अपने से भिन्न दूसरे का सङ्कल्प किया।

"स हैता वानास" वह इतना बड़ा था यथा—

स्त्री प्रमाꣳसौ सम्परिष्वप्तौ।

जितने रमण काल में स्त्री पुरुष एकत्रित हुए होते हैं अर्थात् पौरुष तथा प्रापित शक्ति से मिला हुआ था।

सꣳ इममे वाल्यान् द्वेधा पातयत्।

उसने अपने स्वरूप को दो भागों में विभक्त किया "ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्" जिससे पति और पत्नी भाव प्रकट हुआ।

तस्मादिदमर्घ बृगल मिव स्वैति।

इसी कारण सीप के आधे दल की न्याईं पुरुष का शरीर

होता है "हस्माह याज्ञवल्क्य" ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा कि "तस्मादय माकाश: स्त्रिया पूर्यत" पुरुष का आकाश रूपी शरीर आधा विवाह के अनन्तर स्त्री से पूर्ण होता है।

एवता॑ँ्सम्भवत्ततो मनुष्याः अजायन्त।

उसका उक्त पत्नी के साथ सङ्ग होने से मनुष्य उत्पन्न हुए "सा हेयमीक्षां चक्रे" उस स्त्री ने विचारा।

कथंनुआत्मान मेवजनयित्वा स भवति हन्त तिरोधानीति।

किस प्रकार मुझे अपने से ही उत्पन्न करके भोग की इच्छा से प्राप्त होता है इस लिये मैं रूपान्तर से लीन हो जाऊं "सा गौर्भवति" तब वह गऊ हो गई "वृषभइतर" दूसरा वृषभ अर्थात् साँड बन गया "तान्स मेवा भवत्" वह सङ्ग को प्राप्त हुए "ततो गावो अजायते" तब गऊवें उत्पन्न हुई।

वड़वेतरा भवदश्च वृषभइतरो गर्धभीतरा गर्धभ इतरस्ताँ्स मेवा भवत्।

फिर वह घोड़ी बन गई, और दूसरा घोड़ा, वह गधी हो गई और दूसरा गधा बन गया, जब उनका परस्पर सम्बन्ध हुआ।

ततः एक शफ मजायताजेतरा भवद्वस्त इतरोविरतरा मेष इतरस्ताँ स मेवा भवत्।

तो उनसे घोड़ा गधा तथा खच्चरादि एक खुर वाले उत्पन्न हुए फिर वह बकरी बन गई और दूसरा बकरा वह भेड़ बन गई और दूसरा मींढा बन गया उनका परस्पर संयोग होने से भेड़ बकरी उत्पन्न हुई जैसा "ततोऽजावयो ऽजायन्त" इसी प्रकार।

एव मेव यदिदं किंच मिथुन मपि पिपीलिकाभ्य स्तत्सर्व मसृजत ।

इसी प्रकार चींटी पर्यन्त जो कुछ चराचर जगत है उस सब को परमेश्वर ने उत्पन्न किया है जब गुरु द्वारा विचार किया ।

सो वेदहं वावसृष्टि रस्म्यहम् ।

उस परमात्मा ने जाना कि सर्व प्रपञ्च अर्थात् यह सब का कर्ता मैं ही हूं सब कुछ मेरे से अन्य कोई नहीं है क्यों कि यह सम्पूर्ण जगत् मैंने ही उत्पन्न किया है जैसा कि "हीद २ सर्व मसृ क्षीति" तब वह सृष्टि और सृष्टि का कर्ता हो गया यथा "ततः सृष्टि-रभवत्" इस प्रकार से जो विराट को सृष्टि कर्ता जानता है वह परमात्मा की सृष्टी में प्रसिद्ध चिरँजीवि होकर मोक्ष हो जाता है जैसाकि—

सृष्ट्याः २ हास्यै तस्यां भवति यः एवंवेद ।

और श्रुति—

अथेत्यभ्यः मन्थत् समुखाच्च, योनेर्हस्ताभ्यां चाग्निमसृजत् ॥

इसके अनन्तर उस परमात्मा ने प्रकृति को अर्थात् माया ज्ञान को सञ्चालन द्वारा तैजस कारण से अग्नि को उत्पन्न किया इस लिये दोनों बिना लोमों के हैं हस्त और मुख एवं प्रकृत्ति कारणा-वस्था में अलोमक कोमलकार्य शून्य थी इस लिये प्रकृत्ति में ही सञ्चालन किया गया जो कार्य अवस्था में परिणत हुई, प्रकृति को कहते हैं उसकी पूजा करो २, वह प्रकृति वर्ग का ही कार्यजात विकार है निश्चय कर यह विराट् आत्मा ही सब देवताओं का स्वरूप है और यह जो कुछ आर्द्र रूप है उसको रसतन्मात्रा जलीय

परमाणुओं से उत्पन्न किया जो वह सोम है बस यह सम्पूर्ण प्रपञ्च अन्न और अन्नाद स्वरूपहै सोम अन्नरूप और अग्नी अन्नाद है, यह अग्नी सोमात्मक विराडात्मा की सृष्टी हैं उसने अपने उत्तम भाग से देवताओं को उत्पन्न कर उनको मुक्ति के योग्य किया इस लिये वह अति स्रष्ट कहाता है जो इस प्रकार आत्मा को जानता है वह निश्चय करके अपना आप ही सब कुछ है।

तद्धयेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत् तन्नाम रूपाभ्यामेव व्याक्रियता सौ नामाय मिदꣳरूप इति,

अर्थ—यह अव्याकृत्त जगत् उत्पत्ति से पूर्व नामरूप से शून्य था फिर उस पुरुष ने यह देवदत्त यह यज्ञदत्त यह शुक्ल और यह कृष्ण है इस प्रकार जगत् को नाम और रूप से अलंकृत किया जैसाकि इस काल में भी देखा जाता है कि यह पदार्थ इस नाम और इस रूप वाला है—

एव इह प्रविष्ट आनखाग्रेभ्यो यथा क्षुरःक्षुरधाने वहितः स्यात्,

यह आत्मा नखशिख पर्यन्त शरीर में प्रविष्ट है जैसाकि क्षुर छुरा क्षुरधानः अर्थात् म्यान में रक्खा हुआ होता है—

विश्वम्भरोवा विश्वम्भर कुलाये तं न पश्यन्ति,

और जिस प्रकार अग्नि काष्ठ में होने पर भी दृष्टिगत नहीं होती इसी प्रकार जीवात्मा को गुरु के बिना देख नहीं सक्ते, जीवात्मा रूपी नेत्र के बिना अनन्त अपार सुख स्वरूप सर्व का अपना आपा कैसे प्रकट हो सक्ता है।

अकृत्स्नोहि सः प्राणन्नेव प्राणो नाम भवति,

वह प्राणन् क्रिया करता हुआ प्राण नाम वाला होता है वदन-

वाक् पश्यन् चक्षु शृण्वन श्रोत्रं मन्वानो मनस्तान्य स्यैतानि कर्म नामान्येव" बोलता हुआ वाणी देखता हुआ चक्षु सुनता हुआ श्रोत्र मनन करता हुआ मन होता है सो यह सब उस आत्मा के कर्म नाम अर्थात् गौण नाम हैं।

स योत एकैक मुपास्ते न स वेदा कृत्स्नो ह्येषो अत एकैकेन भवति ॥

वह जो इन में से एक एक की उपासना करता है वह उस को नहीं जानता क्योंकि वह एक से पूर्ण नहीं होता इस लिये उचित है कि उक्त विशेषणों में कहे हुए "आत्मेत्येवोपासीत" आत्मा की उपासना करे, अत्रे ह्येतत् सर्व एकं भवन्ति" क्योंकि आत्मा में यह सारे कर्म गुण नाम रूप एक हो जाते हैं, ततेतत् यदनीयमस्य सर्वस्य इदय आत्मा" सो प्रत्येक पुरुष को इसी आत्मा की खोज करनी चाहिये "अनेन ह्येतत सर्वं वेद" इसी द्वारा पुरुष को प्रत्येक का ज्ञान होता है—

यथा हवै यदे नानु विन्दे देवं कीर्तिंश्लोकं विन्दते यः एवं वेद ॥

जैसे पुरुष खोज करने से खोये हुये पशु आदि को पा लेता है इसी प्रकार प्राण वाणी आदि की खोज से जो पुरुष उस आत्मा को जानता है वह कीर्ति और स्तुति को प्राप्त होता है। "तदेतत् प्रेय पुत्रात् प्रेय वित्तात्" वह आत्मा अपना आप पुत्र और वित्तादि से अत्यन्त प्रीतम है "अन्यस्मात् सर्वस्मादन्तरतरं इदयमात्मा" अन्य सब से अत्यन्त अपना आत्मा ही सब को प्रिय है अन्य पदार्थों का प्यार केवल एक अपना आपा ही है वही सूर्य में चमकता है, वही द्योलोक में दमकता है वही चन्द्र तारागण और विद्युत

शक्तियों में लहलहाता हुआ प्रकाशक और सब प्रकाश जगमगाहट् हो रहा है अनन्त अपार शान्तस्वरूप निरुपद्रव एक रस शुद्ध स्वरूप में ही आत्मा सब का प्रियतम अर्थात् सब का अपना आप हूं इस प्रकार अनात्मदृष्टि को परित्याग कर सब कुछ आत्मा ही से प्यार करो "सऽयोनियमात्मनः प्रियं ब्रुवाणं ब्रूयात्" सो जो इस आत्मा से अन्य पुत्रादिकों को प्रिय मानता है उस के प्रति आत्म वेत्ता का कथन है कि—

प्रियꣳ रोत्स्यतीति ईश्वरो ह तथैवस्यात् ॥

यदि आत्मातिरिक्त पदार्थों को ही तू प्रिय समझता है तो निश्चय अज्ञानी है; अपने प्यारे के लिये रोवेगा, अतएव उचित है कि पुत्रादिकों में प्रियता का अभिमान छोड़ कर आनन्द स्वरूप परमेश्वर ही अपने आपे आत्मा की ही उपासना करें "आत्मान मेव प्रियमुपासीत" अपने आप को ही सब से प्यारा समझ उपासना करे—

स यः आत्मान मेव प्रियमुपासते न हास्य प्रियं प्रमायुकं भवति ॥

सो जो आत्मा को प्रिय जानता हुआ अपने सच्चिदानन्द स्वरूप की उपासना करता है उसके लिये कोई अनात्म पदार्थ दुखदाई नहीं होता किन्तु सब कुछ अपना आप ही अनन्त अपार परमानन्द ही विदित होता है "ओ३म् ओ३म् ओ३म्" अथ मनुष्य ब्रह्म विद्या द्वारा सब कुछ हो जाते हैं अर्थात् सर्वात्म भाव का जो पुरुष चिन्तन करता है उस ब्रह्म का क्या स्वरूप है और वह किस प्रकार सङ्कल्प करके सर्व रूप हो जाता है और किस सङ्कल्प द्वारा जगत् को उत्पन्न करके सर्वान्तर्यामी रूप से नियमन करता है। उत्तर—

ब्रह्म वा इदमग्रासीत् तदास्मान मेवावेत् ।

अर्थ—सृष्टि से पूर्व एक मात्र ब्रह्म ही था और वह अपने आप को इस प्रकार से सङ्कल्प करने लगा, अर्थात यह जानता भया कि "अहं ब्रह्मस्मीति" मैं ब्रह्म हूं "तस्मात्तत् सर्वम् अभवत्" उसी से वह सब कुछ हो गया इसी प्रकार देव ऋषि और मनुष्यों के मध्य जिस २ ने मैं ब्रह्म हूं ऐसा निश्चय कर अपने आपको जाना वही ब्रह्म हो गया इसी प्रकार जब बाम देव ने अपने आप को शुद्ध ब्रह्म जाना तब और ऋषियों के प्रति कहा कि मैं ही मनु और मैं ही सूर्य हुआ अब भी जो इस प्रकार समझता है कि मैं ही ब्रह्म हूं वह सब का आत्मा ही हो जाता है सब उसे प्यार करते हैं जैसा कि वेद भगवान् उपनिषद में प्रकाश करता है ।

तदिदमप्येतर्हि यः एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति । तस्य ह न देवाश्च न भूत्या ई शते आत्माहि ष्ठंस भवति ।

ऐसे पुरुष का ऐश्वर्य दूर करने में देवता भी समर्थ नहीं होते क्यों कि वह इन देवताओं का आत्मा अपना आपा ही हो जाता है "अथ योन्यान् देवता मुपासते" और जो अपने आपे परमात्मा से भिन्न अन्य देवता की उपासना करता है ।

अन्यो सावन्योऽहमस्मीति नसवेद यथा पशुरेवछंसदेवानां ।

वह परमात्मा और देवता मेरे से भिन्न हैं यह समझ अन्य देवता की उपासना करता है और मैं ही सर्व देवताओं का आत्मा शुद्ध ब्रह्म हूं यह नहीं जानता तब वह देवता और इन्द्रियों का पशु है ।

यथा हवै वहवः पशवो मनुष्यं भुज्यु ।

जैसे बहुत पशु दोहन वाहनादि से एक २ मनुष्य का पालन करते हैं ।

एवमेकैक पुरुषो देवान् भुनक्ति ।

इसी प्रकार बहु पशु स्थानीय एक २ अज्ञानी पुरुष विषय भोग द्वारा देवों अर्थात् इन्द्रियों का पोषण करते हैं ।

एकस्मिन्नेव पशावादीय मानेऽप्रियं भवति ।

यदि किसी का एक भी पशु ले लिया जाय तो उसको अप्रिय होता है ।

किं बहुषु तस्मादेषां तन्नप्रियम् ।

तो क्या बहुत पशु लेने पर वह अप्रिय नहीं होता किन्तु अधिक होता है ।

तदे तन्मनुष्याः विदः

इस लिये केवल कर्मी वा पामर पुरुषों के इन्द्रियों को यह प्रिय नहीं कि पुरुष ब्रह्मज्ञानी बने । बस समझ जाओ सैनों के बैन में जैसा कि एक महात्मा कथन करते हैं—

जो कोई समझे सैन में वासे कहिये बैन ।
सैन बैन समझे नहीं वासे कछू कहैन ॥

दृष्टान्त—किसी स्थान में गुरु शिष्य दो महात्मा रहते थे शिष्य उस महात्मा का भिक्षा निमित्त नगर में जाया करता था कि एक दिन एक साहूकार के गृह में भिक्षा करते हुए उस साधू से पिंजरस्थ शुक ने अर्थात एक तोते ने पूछा कि महात्मा जी तुम कहां रहते हो और कुछ मेरी मुक्ति का उपाय भी जानते हो तो

कथन करो क्योंकि मैं महादुखी पराधीनता के कारण हो रहा हूं यद्यपि साहूकार अपने कुटुम्ब सहित खानपानादि से मेरा महान् सत्कार करता है तदपि वह स्वतन्त्रता कहां है—जब अनन्त अपार खुले हुए आकाश में अपने मित्रों के साथ उड़ता था लहलहाती हुई सुन्दर और कोमल वृक्षों की शाखाओं पर किलोल करता हुआ नाना भांति के फलों का रसास्वाद लेकर परमानन्द उड़ाता था पंखों से वायु को शुद्ध करता था सब से ऊंचा मेरा आनन्द बन्धन ने नष्ट भ्रष्ट कर दिया परन्तु निर्दयी पक्षी पकड़ने वाले तथा पालने वाले पामरों को मेरे ऊपर दया कहां हाय, एक तो मेरी स्वतन्त्रता जाती रही जो मुझ को सर्व से प्रिय थी क्यों कि कहा भी है—

सर्वं परवशं दुःखं सर्व मात्मवशं सुखम् ।
एतद् विद्या समासेन लक्षणं सुख दुःखयोः ॥

पराधीनता में सब दुःख ही दुःख है तथा स्वाधीनता में सब सुख ही सुख है यही विद्या से संक्षेप से सुखदुख का लक्षण है, और भी कहा है—

पराधीन सुपनेहु सुख नाहीं ।
करहूं विचार देखो मनमाहीं ॥

कोई समझे वा न समझे परन्तु जिसके लागी सोइ जाने दूसरा दूसरे की व्यथा क्या जाने परन्तु जब इस पाप का फल भोगना पड़ेगा तब तो पाश बन्धक और पिंजरे में बन्धन करने वाले भी पछतायेंगे और बिलबिलायेंगे चिल्लायेंगे परन्तु अब वैसी हृदय की आंखें नष्ट हो रही हैं जो मेरे पराधीनता के दुःख को नहीं देखतीं दूसरा दुःख अपनी जाति से और कुटुम्ब से भिन्न होने

का भोगना पड़ा इसको भी सब जानते हैं, जिनको कि यह दुख हुआ है महाराज मैं कहां तक अपने दुखों को कहां तक आप से रोऊं सहस्रों सङ्कल्प डाह मार कर हृदय से उठते हैं और मस्तिष्क में खलबली मचाकर नष्ट हो जाते हैं कोई विचार अपने आप छूटने का नहीं मिलता विना सद्गुरु के सो अब आप मिल गए हो मैं आप की ही शरण हूं। किसी प्रकार मुझ को इस बन्धन से विमुक्त करो। यह श्रवण कर वह साधू बोला कि मैं तेरी मुक्ति की विधि कुछ भी नहीं जानता यदि जानता होता तो कह देता, विना जाने कहने में श्रुति यह दोष कथन करती है "समूलमिव शुष्यति योऽनृतमभिवदंति" जो असत्य कहता है वह मूल सहित नष्ट भ्रष्ट हो जाता है और भी वेद में कहा है, "सत्य मवति हन्त्यसत्" सत्य ही रक्षा करता है और असत्य पुरुष का हनन करता है क्योंकि झूठ बोलने वाले का बेड़ा ग़रक़ "सत्यमेव जयते नानृतम्" सत्य की ही जय होती है असत्य की नहीं इस लिये मैं असत्य नहीं कहता परन्तु मेरे जो गुरु हैं वह सब कुछ जानते हैं उन से पूछूंगा तब तुझे बतलाऊंगा। यह श्रवण कर वह तोता बोला कि महाराज अवश्य ही मेरा यह निवेदन उन की सेवा में कह देना वह साधू भिक्षा ले कर अपने गुरु के निकट आया और भिक्षा धर कर नमस्कार की। तदनन्तर उस तोते का समाचार गुरु से निवेदन करने लगा महात्मा सुनते ही लोटपोट हो गये आंख और श्वास को बन्द कर लिया और चेष्टा शून्य हो कर चुप हो गये शिष्य डर गया और लगा सोचने कि यह समाचार अब गुरु को कदापि न कहूंगा नहीं तो न जाने क्या हो जाय पुनः अपने गुरु को उठा कर सचेत किया। तदनन्तर दूसरे दिन पुनः भिक्षा को गया तब तोते ने फिर वही प्रश्न पूछा तो साधू

ने कहा कि बस मित्र तुम्हारे कहने में ऐसा प्रभाव था मैं ने तो कहा ही था कि गुरु जी श्रवण कर मूर्छित हो गये तोते ने तुरन्त ही गुरु की सैन समझली और तदनुसार स्वयं बर्ताव कर बन्धन से निकल यह कहने लगा— दोहा:—

जो कोई समझे सैन में तासे कहिये बैन ।
सैन बैन समझे नहीं तासे कुछ कहैन ॥

निश्चय करके सो यह आत्मा हृदय में है इस लिये आत्मा को हृदय कहते हैं जो पुरुष परमात्मा को हृदय और मस्तिष्क में निरन्तर विद्यमान मान कर सांसारिक यात्रा करते हैं वह सदा ही उन्नत होते हैं स्वर्ग लोक भोगते हैं—

अथ यः एव सम्प्रसादो स्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योति रूप संपद्य स्वेन रूपेण अभिनिष्पद्यत एष आत्मेति ॥

अर्थ—यहां से आगे (य:एष) जो यह (सम्प्रसाद:)सब प्रकार प्रसन्नता पूर्वक (अस्माच्छरीरासत्समुत्थाय) इस शरीर से उठकर (परमज्योति रूप संपद्य) परम ज्योति स्वरूप परमात्मा को प्राप्त हो कर (स्वेन रूपेणाभि निष्पद्यते) अपने निज रूप से वर्तमान होता है, "इति हो वाच" आचार्य बोले, एष आत्मा यही आत्मा है "एतदमृतं" यही अमृत है "अभयं एतद् ब्रह्मेति" अभय यही ब्रह्म है, "हवै" निश्चय करके,

तस्य एतस्य ब्रह्मणो नाम सत्य मिति ॥

"तस्य एतस्य ब्रह्मणो नाम सत्य मिति" उस इस ब्रह्म का नाम सत्य है,"अथ य:आत्मा स सेतु"और जो आत्मा है वह सेतु है जो"एषां लोकानां असम्भेदाय विधृति:" यह जो इन लोकोंके गड़बड़झाले को

नियम में रखता है।

नैतंसेतुमहो रात्रे तरतो न जरा न मृत्युर्न शोको न धर्मः न अधर्मः।

इस सेतु को दिन और रात नहीं पार कर सकते न जरावस्था न मृत्यु न शोक न धर्म न अधर्म इस सेतु को उलङ्घन कर सकते हैं सब उरे ही में सेतु को प्राप्त न हो कर चक्र लगाते हैं।

सर्वे पाप्मानो तो निवर्तन्ते अपहत पाप्माह्येष ब्रह्मलोकः।

इस आत्मा से सब पाप निवृत्त हो जाते हैं क्योंकि यह ब्रह्म लोक पाप से रहित है "तस्माद्वा एतं सेतुं तीर्त्वा" इसी कारण निश्चय करके इस सेतु से तरके "अन्ध सन्ननन्धो भवति" अन्धा नेत्र वाला हो जाता है अर्थात् अन्धा सर्वज्ञ हो जाता है "विद्ध सन् न विद्धो भवति" दुखी पुरुष सुखी हो जाता है अर्थात् वहां जाकर घायल घायल नहीं रहता "उपतापीसन्ननुपतापी भवति" रोगी अरोगी हो जाता है अर्थात् सर्व तापों से रहित हो जाता है।

तस्माद्वा एतं सेतुं तीर्त्वापि नक्त महरेव अभिनिष्पद्यते।

निश्चय कर इस कारण इस सेतु को तर कर रात्रि भी दिन ही हो जाती है "सकृद् विभातो ह्येष ब्रह्मलोक" क्योंकि यह ब्रह्म लोक सर्वदा प्रकाश स्वरूप है—

तद्य एवैनं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दति॥

वह जो पुरुष निश्चय करके ब्रह्मचर्य के द्वारा ब्रह्म लोक को प्राप्त करते हैं "तेषा मेवै ब्रह्म लोकः", उन्हीं को यह ब्रह्म लोक प्राप्त होता है "तेषां सर्वेषु लो केषु कामचारो भवति", उन्हीं का सर्व लोकों

में स्वच्छन्द गमन होता है और "यद यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्य मेव तत्" जिस को यज्ञ कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है और "यत् सत्रायण मित्या चक्षते ब्रह्मचर्य मेव तत्" जिस को सत्रायण यज्ञ कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है "ब्रह्मचर्येण ह्येव सत् आत्मानं स्वाणं विन्दते" क्योंकि ब्रह्मचर्य से ही अविनाशी जीव की रक्षा होती है और "यन्मौनमित्या चक्षते ब्रह्मचर्य मेव तत्" जिस को मौन कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है "ब्रह्मचर्येण ह्येवात्मान मनु विद्य मनुते" क्योंकि ब्रह्मचर्य से ही परमात्मा को भले प्रकार जान कर मनन करता है इसी प्रकार अनाशकायन और अरण्यायन यज्ञ कहते हैं क्योंकि "तदेष ह्यात्मा न नश्यति" निश्चय करके वह यह आत्मा नष्ट नहीं होता "यं ब्रह्मचर्येणाऽनुविन्दते" जिस को ब्रह्मचर्य से प्राप्त करते हैं यहां तीसरे द्यौ लोक अथवा ब्रह्मलोक में, अर, और एयः दो समुद्र हैं अथवा ज्ञान काण्ड और कर्म काण्ड और "एरं मदीशरः" अर्थात् पूर्ण हर्षदायक अमृत का सर है वहां अमृत चूता हुआ अश्वत्थ वृक्ष ऐसी जो प्रभुनिर्मित ज्योतिर्मय ब्रह्मपुरी है उसको ब्रह्मचर्य के बिना कोई नहीं पा सक्ता यह ब्रह्मपुरी हृदय की नाड़ियों से अच्छादित वे नाड़ियें पिंगल भूरे वर्ण वाली अति सूक्ष्म हैं और श्वेत नीली पीतवर्ण की रक्त वर्ण की ये सब नाड़ियें निश्चय करके यह सूर्यपिंगल शुक्ल नीलपीत लोहित है यह आदित्य जैसे दूर तक फैला हुआ महान् विस्तीर्ण मार्ग समीपस्थ और दूरस्थ इन दोनों ग्रामों को प्राप्त होता है इसी प्रकार सूर्य की ये किरणें इस लोक और परलोक अर्थात् पृथिवी और सूर्य इन दोनों लोकों को प्राप्त होती हैं, वे किरणें आदित्य से निकल कर चारों ओर विस्तीर्ण हो कर इन नाड़ियों में प्रविष्ट होती हैं और इन नाड़ियों में प्रविष्ट हो कर बाहर शरीर में फैलती हैं और

पुनः आदित्य में ही प्रविष्ट होती हैं वह जीवात्मा मन जिस काल में सुषुप्ति अवस्था द्वारा सम्पूर्ण इन्द्रिय वृत्तियों को अपने में संहार कर लेता है तब भले प्रकार प्रसन्न चित्त हुआ हुआ स्वप्न नहीं देखता उस काल में इन नाड़ियों में प्रविष्ट हुआ होता है उस समय कोई पाप उसको स्पर्श नहीं करता क्योंकि तब अपने तेज से सम्पन्न होता है "यत्रेतद स्माच्छरीरा दुत्क्रामति" जिस काल में यह जीव इस शरीर से निकलता है "अथ एतैरेव रश्मिभि रूर्ध्व माक्रमते" तब इन ही रश्मियों द्वारा ऊपर को जाता है। "स ओमिति वा होद्वामीयते" वह पुरुष निश्चय करके ओमिति ओं है इस प्रकार ब्रह्म का ध्यान करता हुआ ऊपर को जाता है "स यावत्क्षिप्येन् मनस्ताव दादित्यं गच्छति" जब तक मन का क्षय नहीं होता तब तक वह आदित्य को प्राप्त होता है क्योंकि—

एतद्वै खलुलोकद्वारं विदुषां प्रपदनं निरोधो विदुषाम्,

निश्चय करके यही ब्रह्मलोक का द्वार विद्वानों के लिये खुला हुआ है और अविद्वानों के लिये बन्द है या यों समझो कि हृदय की एकसौ एक नाड़ियें हैं उन नाड़ियों में से एक नाड़ी मूर्द्धा की ओर निकली हुई है उस नाड़ी द्वारा ऊपर को जाता हुआ अमृतत्व को प्राप्त होता है और जो अन्य विविध प्रकार की नाड़ियां हैं वे केवल उत्क्रमण के लिये हैं, इस सूक्ष्म मार्ग के दिखाने वाला होने से जो परमात्मा आत्मदा बलदा कहाता है जिसकी सब विश्व इस प्रकार उपासना करता है कि जैसाकि देवासुरों की सभामें प्रजापति ने कहा—

यः आत्मा अपहत पाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सो पिपासः सत्य कामः सत्य सङ्कल्पः सोऽन्वेष्टव्य

सविजिज्ञासितव्य—

सः सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान् यस्तमात्मान मनु विद्ये विजानातीतिह प्रजापतिरुवाच ॥

प्रसिद्ध प्रजापति देवासुर संग्राम वेदी पर खड़े हो कर बोले कि हे शिष्यो ! जो परमात्मा पाप से रहित है जरावस्था से रहित है मृत्यु से रहित है शोक रहित और क्षुधा पिपासा रहित है सत्य की कामना वाला और सत्य सङ्कल्प है वही खोजने योग्य और वही जिज्ञासा योग्य है जो उस परमात्मा को खोज कर जानता है वह सब लोकों को और सब कामनाओं को प्राप्त होता है अथवा होते हैं यह सुन कर देवासुरों के कर्ण खड़े हो गये तदनन्तर परस्पर सम्मेलन करने लगे तत्पश्चात् विश्वास कर्तृ समिति द्वारा अपने २ राजाओं से कहने लगे कि परम गुरु जगत् पिता प्रजा पति के कथनाऽनुसार हम सब राजा और प्रजावर्ग आत्मा को नहीं जानते जो पाप से रहित है पाप उस का नाम है जिस कर्म द्वारा अन्य जीवों को दुःख उत्पन्न हो और अपने को आभासमात्र सुख की प्रतीति हो जो जरा से रहित है जरा जर्जरीभूत अर्थात् जीर्णावस्थाको कहते हैं जो प्रायः तडिताकाश के परमाणु और तृसरेणुओं में भी विरस विदित होती है विमृत्यु अर्थात् मृत्यु से भी रहित है मृत्यु संयोग हुए के वियोग को कहते हैं, और सर्व शोकों से रहित वह आत्मा जैसा कि नारद कहता है "तरति शोकमात्मवित्" आत्मवित् शोक को तर जाता है, शोक यहां पर यह जैसा महाराज ने सन्देह शक की कि जो मैं ब्रह्म साक्षात्कार गुरु द्वारा धर्म दिवाकर महाराज द्वारा कर सकूंगा वा नहीं, यही शोक करने से रैक ऋषि ने महाराज को शूद्र कह दिया नारद पूर्वोक्त विद्याओं द्वारा शोकित था तात्पर्य यह

है कि प्राकृत पदार्थों द्वारा जो पुरुष दुःख का अत्यन्ताभाव करना चाहते हैं वह शोकित हैं और क्षुधा पिपासा से रहित हैं और हम क्षुधा पिपासा सहित ही हैं सत्य कामना वाला और सत्य सङ्कल्प है हम को भी सत्य कामना वाला और सत्य सङ्कल्प वाला होना चाहिये महाराज प्रजापति ने कहा है कि वही खोजने योग्य है उसी को खोजो, तदनन्तर देवताओं में से इन्द्र और असुरों से विरोचन दोनों राजा यद्यपि परस्पर विरोधी भी थे वरञ्च सार्वभौम स्वराज्य सुख की बृद्धि के लिये गुरु भाई बन कर आत्मा की खोज के लिये प्रजापति के समीप आ उपस्थित हुए गुरु भाव से नमस्कारादि कर समित पाणी बोले कि महाराज आपने जो आत्मा जानने योग्य कहा था कि जिस के जान लेने से सर्वलोकों को प्राप्त हो कर सर्व कामनायें पूर्ण हो जाती हैं हम तुम को पूछते हैं कि आत्मा को कहां खोजें तब प्रजापति बोले कि ३२ वर्ष मेरे वचन को सत्य मान कर यहीं निवास करो उन दोनों ने वैसा ही ३२ वर्ष ब्रह्मचर्य पूर्वक प्रजापतिके समीप निवास किया तब उन दोनों से प्रजापति बोले कि तुम इच्छा करते हो तब वे दोनों बोले कि जो परमात्मा पाप रहित जरावस्था रहित मृत्यु से रहित शोक रहित क्षुधा रहित पिपासा रहित है और सत्य की कामना वाला और सत्य सङ्कल्प है वही ग्रहण करने योग्य और वही जिज्ञासा योग्य है जो उस आत्मा को खोज कर जानते हैं वह सब लोकों और सब कामनाओं को प्राप्त होते हैं आपके इस उपदेश के कथनाऽनुसार हम जानते हुए इसी परमात्मा के जानने की इच्छा से हम दोनों ने यहां आप के समीप निवास किया है तदनन्तर गुरु आचार्य कथन करते हैं जैसा कि—

तौह प्रजापतिरुवाच एषोऽक्षणि पुरुषो दृश्यते एष

आत्मेति होवाचैं तदमृत अभयं एतद् ब्रह्मेति ॥

उन दोनों से प्रजापति बोले कि जो यह पुरुष अक्षि में दीखता है यही आत्मा है यही परमात्मा है अमृत अभय ब्रह्म है इस के अनन्तर वे प्रसिद्ध दोनों बोले कि हे भगवन् ! जो यह जलों में और जो यह आदर्श अर्थात् दर्पण में दृष्टि गत होता है यह आत्मा कौन है तब प्रजापति बोले कि—

एषु एतषु सर्वेषु परिख्यायत एष उर एव ॥

इन सब पदार्थों में परमात्मा भले प्रकार देख पड़ता है परन्तु निश्चय करके वही आत्मा अपहत पाप्मादि गुण विशिष्ट है और प्रजापति पुनः बोले जल पात्र में आत्मा को दोनों देखो यदि उस में भी आत्मा को न जान सको तो मुझ से आ कर पूछो अर्थात् कहो वह दोनों जलपात्र में आत्मा को देखने लगे फिर उन दोनों से प्रजापति बोले कि इस में क्या देखते हो वे दोनों बोले कि भगवन् हम दोनों सिर से ले कर पैर तक यह सब ही आत्मा का प्रतिरूप देखते हैं। तदनन्तर उन दोनों से प्रजापति बोले कि तुम दोनों विमल वस्त्रों से भले प्रकार अलंकृत होकर जलपात्र में आत्मा को देखो वह दोनों विमल उत्तम वस्त्रों से अलंकृत हो कर जलपात्र में देखने लगे, उन दोनों से प्रजापति बोले कि क्या देखते हो इन्द्र और विरोचन बोले कि जैसा यह शरीर साफ सुथरा प्रथम था वैसा ही अब देखते हैं हे भगवन् ! जैसे हम दोनों विमल उत्तम वस्त्रों से भले प्रकार अलंकृत हैं इसी प्रकार हम दोनों दर्पण में भी अलंकृत देख पड़ते हैं तब प्रजापति बोले कि यही आत्मा है यही अमृत यही अभय है और यही ब्रह्म है। यह सुन कर वे दोनों शान्त हृदय वहां से चले गये।

प्रजापति उन दोनों को जाता हुआ देख बोले कि आत्मा को न पा कर न जान कर जाते हैं जो देवता अथवा असुर इस ज्ञान वाले होंगे वे अवश्य नष्ट हो जावेंगे अब वह प्रसिद्ध शान्त हृदय विरोचन निश्चय करके असुरों के निकट पहुंचा और असुर भी अपने महाराज को आया हुआ देख महान् हर्ष से हर्षित हुये। पुनः उन्हों ने महती सभा कर महाराज से पूछा कि हे राजराजेश्वर आप ने जो ३२ वर्ष पर्यन्त आत्मा का अन्वेषण किया और गुरु प्रजापति की महती सेवा की उसका फल जो आत्म ज्ञान है वह दया कर हमारे प्रति कथन करें तब विरोचन ने उन असुरों के प्रति इस ज्ञान को कहा कि इस लोक में शरीर ही पूजनीय और शरीर ही सेवनीय है, यहां शरीर को ही पूजता हुआ शरीर का ही सेवन करता हुआ इस लोक और परलोक दोनों को प्राप्त होता है, प्रजापति ने यही हम को उपदेश किया कि जो यह पुरुष अक्षि में दीखता है यही आत्मा है यही अमृत अभय ब्रह्म है, इस के अनन्तर हम से कहा कि जो यह जलों में और जो यह दर्पण में अभिगत होता है वह आत्मा कौन है तब प्रजापति बोले कि इन सब में यही अपना शरीर आत्मा भले प्रकार देख पड़ता है हम ने भी प्रजापति के उक्तानुसार जलपात्र में अपने आत्मा को देखा प्रजापति बोले इस में क्या देखते हो पुनः हम बोले कि हे भगवन् ! सिर से पैर तक यह सभी आत्मा का प्रतिबिम्ब देखते हैं फिर उन्हों ने कहा कि वस्त्रों से भले प्रकार अलंकृत हो कर देखो तब हम ने उक्तानुसार ही किया तब प्रजापति बोले क्या देखते हो हम ने कहा हे भगवन् जैसे हम दोनों विमल उत्तम वस्त्रों से भले प्रकार अलंकृत हैं इसी प्रकार दर्पण में देख पड़ते हैं। प्रजापति बोले कि यही आत्मा है यही अमृत यही अभय ब्रह्म है अब आनन्द में खाओ पीओ मौज उड़ावो खूब विद्या पढो और

उस से उपभोग करो शरीर ही आत्मा है इस से अतिरिक्त आत्मा कोई नहीं जैसा कि लिखा है—

तच्चैतन्य विशिष्ट देह एव आत्मा ।
देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाणाभावात् ॥

अर्थ—इस शरीर में चारों भूतों के संयोग से जीवात्मा उत्पन्न हो कर उन्ही के वियोग के साथ ही नष्ट हो जाता है इस लिये वह चैतन्य विशिष्ट देह ही आत्मा है देह से अतिरिक्त आत्मा में कोई प्रमाण नहीं है क्योंकि मरे पीछे कोई भी जीव प्रत्यक्ष नहीं होता हम एक प्रत्यक्ष को ही मानते हैं । क्योंकि प्रत्यक्ष के विना अनुमानादि होते ही नहीं इस लिये मुख्य प्रत्यक्ष के सन्मुख अनुमानादि गौण होने से उन का ग्रहण नहीं करते वरञ्च सुन्दर स्त्र्यादि के आलिङ्गन से आनन्द का करना पुरुषार्थ का फल है यही वृहस्पति कहते हैं ।

यावज्जीवेत् सुखं जीवेन्नास्ति मृत्योरगोचरः ॥
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥

कोई मनुष्यादिप्राणि मृत्यु से अगोचर नहीं है अर्थात् सबको मरना है इस लिये जब तक शरीर में जीव रहे तब तक सुख से रहो जो कोई तुम से यह कहे कि धर्माचरण से कष्ट होता है । जो धर्म को छोड़े तो पुनर्जन्म में बड़ा दुःख पावे उसको तुम यह उत्तर दो अरे भोले भाई जो मरे पश्चात् शरीर भस्म होजाता है कि जिसने कि खाया पिया है वह पुनः संसार में न आवेगा इस लिये जैसे हो सके वैसे आनन्द में रहो लोक में नीति से चलो ऐश्वर्य को बढावो और उससे इच्छित भोग करो यही लोक समझो परलोक कुछ नहीं देखो पृथ्वी जल अग्नि वायु इन चार भूतों के परिणाम से यह शरीर बना है इसमें इनके योग संघर्षण से

चैतन्य उत्पन्न होता है, जैसे मादक द्रव्य खाने पीने से मद (नशा) उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार बादलों से टकरा कर विद्युत, हस्तों के ताड़न से शब्दादि उत्पन्न होते हैं, इसी प्रकार उनके वियोग पर नष्ट होकर उन्हीं में लय हो जाते हैं इसी प्रकार जीव के साथ उत्पन्न होकर शरीर के नाश के साथ आप भी नष्ट हो जाता है। फिर किसको पाप पुण्य का फल होगा और

महामोह भूपसुअनूप देख हंसेअति अहो जड़बुद्धि सबलोक बौरानेहैं
लोक परलोक माहीं भोक्ता अनूप सुख देहते विभिन्न आत्मा बखानेहैं

आकाश तरु फूलन विलास फल आस करे।
कहो नभ फल हू को स्वाद किन जाने हैं॥
भये खोटे पण्डित पखंड सु चलाये जग।
बोल सुकपोल लोग सगरे ठगाने हैं॥

अर्थ—सगरी असुर सभा इस व्याख्यान से हर्षित होकर राजा की ओर सहानुभूति का परिचय देती हुई प्रतीत होने लगी फिर महाराज ने कहा अहो बड़े आश्चर्य की बात है जड़ बुद्धि सभी लोग उन्मत्त होगये कि जो देह ते भिन्न मूढात्मा कथन करते हैं और इस जन्म में किये हुए शुभ कर्मों का फल परलोक में सुख चाहते हैं यह इच्छा इनकी आकाश वृक्ष के फूलों की शय्या पर निवास कर आशा करते हैं। उस आकाश फल खाने के समान है कहो इनको स्वाद कैसे आवेगा पढ़ लिख कर पंडितों ने लोगों के ठगने के लिये जो वस्तु नहीं है उसको भी वेद के द्वारा सत्य कहा।

जोहि जग नहीं ताह वस्तु को सो आद कहे।
भये हैं बचाल बाक मृषा वेद मानई॥
चारबाकन के वाक सत्य ताहिको असत्य कहे।

भये मूढ लोग ताहि निन्दा को बखानई ॥
अहो तत्वसार को विचार तुम आप करो ।
काटे तन शीश दृग वाही ओर ठानई ॥
नाक मुख पाद कान देह है समान सब ।
मन में न आय कर्म वर्ण को बताई है ॥
अपनी पराई नार सम्पदा बताई श्रुति ।
नाहीं हम जाने शठ वेदको अलाइ है ॥

सांख्य में लिखा है—

प्रमाण भावान्नतत् सिद्धिः सम्बन्धाभावान्नानुमानम् ।

व्याप्ति सम्बन्ध न होने से अनुमान भी नहीं हो सकता पुनः प्रत्यक्षानुमान् के न होने से शब्द प्रमाणादि भी नहीं घट सकते इस कारण ईश्वर की सिद्धी नहीं हो सकती सब जगत् की उत्पत्ति स्वभाव से है जो २ स्वाभाविक गुण हैं उस २ से द्रव्य संयुक्त हो कर सब पदार्थ बनते हैं कोई जगत् का कर्ता नहीं जैसा कि कहा है ।

अग्नि रुष्णो जलं शीतं, शीत स्पर्श तथाऽनिलः ।
केनेदं चित्रितंतस्मात् स्वभावात्तद् व्यवस्थितिः ॥
न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः ।
नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फल दायकाः ॥

न कोई स्वर्ग न कोई नर्क और न कोई परलोक में जाने वाला आत्मा है और न वर्णाश्रम की क्रिया फल दायक है ।

पशूश्चेन्निहितः स्वर्गं ज्योतिष्टोमेगमिष्यति ।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते ॥

जो यज्ञ में ईश्वर निमित्त पशु को मार होम करते हैं और उस होम के करने से वह स्वर्ग को जाता तो यजमान अपने पिता आदिको मार स्वर्ग में क्यों नहीं भेजता।

मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं श्चेत्तृप्ति कारणं।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पादेय कल्पनम् ॥

जो मरे हुए जीवों का श्राद्ध और तर्पण तृप्तिकारक होता तो परदेश में जाने वाले मार्ग निर्वाहार्थ अन्न वस्त्र और धनादि को क्यों ले जाते हैं क्योंकि जैसे मृतक के नाम से अर्पण किया हुआ पदार्थ स्वर्ग में पहुंचता है तो परदेश में जाने वालों के लिये उनके सम्बन्धी भी घर में उनके नामसे अर्पण करके देशान्तर में पहुंचा देवें। जो यह नहीं पहुंचता तो दूसरे जन्म में और स्वर्ग में क्यों कर पहुंच सक्ता है इस से यह विदित होता है कि—

ततश्च जीवनोपायो ब्राह्मणैं विंहितस्तुयः।
मृतानां प्रेत कर्माणि तत्व न्यद्विद्यते क्वचित् ॥

इस लिये यह सब ब्राह्मणों ने अपनी जीविका का उपाय किया है जो दश गात्रादि मृतक क्रिया करते हैं यह सब उनकी जीविका की लीला है—

स्वर्ग स्थिता यदा तृप्तिं गच्छेयुस्तत्र दानतः।
प्रसादस्यो परिस्थानामत्र कस्मान्न दीयते ॥

जो मर्त्यलोक में दान करने से स्वर्गवासी तृप्त होते हैं तो नीचे देने से घर के ऊपर स्थित पुरुष तृप्त क्यों नहीं होता।

यदि गच्छेत्परंलोकं देहादेश विनिर्गतः।
कस्माद्भूयो नचायाति बन्धुस्नेह समाकुलः ॥

जो लोग कहते हैं कि मृत्यु समय जीव निकल के परलोक को जाता है यह बात मिथ्या है जो ऐसा होता तो कुटुम्ब के मोह से बद्ध होकर पुनः घर में क्यों नहीं आजाता, इस हेतु से यह शरीर ही आत्मा है, इसको स्वस्थ और स्वच्छ रक्खो जिस प्रकार होसके संसार का आनन्द भोगो इत्यादि आसुरी विचारानुसार आजकल भी यहां असुरों का सम्प्रदाय चला आरहा है जो दान न देते हुए या परलोक विषयक श्रद्धा न करते हुए या यज्ञ न करते हुए को खेद से सृष्ट पुरुष कहते हैं कि यह असुर हैं। क्योंकि यह ज्ञान असुरों को है ऐसे लोग ही उक्त कर्म नहीं करते वह मृत शरीर को ही गन्धमाला वस्त्रों और भूषणों से अलंकृत करते हैं निश्चय करके इससे ही इस लोक को जीत लेवेंगे ऐसा मानते हैं।

जहां खान न पान न ती सुख हैं वह मोक्ष कहो कतआवत कामा
परलोक नहीं सुख होय कहां उलटे सुत नार तजावत धामा ॥
जगवंचन के हित व्यौंत रची जन धूरत वेदधरे तिहिं नामा।
सरधा सुनयों पथवेद तजे सुपखण्डन के वश होगई वामा ॥

इत्यादि विचारों के अनुसार विरोचन के अनुयायी असुर नास्तिक हो गये और इसके अनन्तर प्रसिद्ध इन्द्र ने विचार करते हुए देवों को प्राप्त न होकर इस भय को देखा कि निश्चय कर जैसे इस शरीर के भले प्रकार अलंकृत होने पर यह छाया पुरुष भी अच्छा अलंकृत होता है और अच्छे वस्त्रधारी होने से छाया भी सुभूषित होती है। इस शरीर का परिष्कार होने से छाया भी परिष्कृत होती है इसी प्रकार काना होने से छाया पुरुष भी काणांसा होता है इस शरीर के अन्धे होने पर यह भी अन्धा होता है इस शरीर के छिन्न भिन्न होने पर छायापुरुष भी छिन्न भिन्न होता है

इस शरीर के नष्ट होने पर यह भी नष्ट होता है इस कारण यहां पर मैं कल्याण नहीं देखता तब वह इन्द्र हाथ में समिधा लेकर पुनः प्रजापति के समीप आये उस इन्द्र को देख प्रजापति बोले हे मघवन विरोचन के साथ शान्त हृदय होकर आप जो चले गये ये पुनः किस इच्छा से आये हैं यह प्रसिद्ध इन्द्र बोला कि हे भगवन् ! निश्चय करके जैसे इस शरीर के भले प्रकार अलंकृत होने पर शुद्ध वस्त्रों के धारण करने पर अन्धे होने पर काणां होने पर छिन्न भिन्न होने पर नाश होने पर यह छायापुरुष भी नाश हो जाता है इस कारण मैं यहां पर कल्याण नहीं देखता हूं। प्रजापति बोले हे इन्द्र यह आत्मा ऐसा ही है जैसा आप कथन करते हैं इसी आत्मा का तो आप से फिर व्याख्यान करुंगा आप ३२ वर्ष मेरे समीप, पुनः वास करें वह प्रसिद्ध इन्द्र प्रजापति के निकट ३२ वर्ष पुनः वास करने लगा। उस इन्द्र से प्रसिद्ध प्रजापति बोले कि यह जो स्वप्न में अपनी महिमा का अनुभव करता हुआ विचरता है यही आत्मा है इतना कथन करके फिर बोले यही अमृत है यही अभय है और यही ब्रह्म है जैसा कि

यः एष स्वप्ने महियानश्चत्येष आत्मेति होवा चैतद्मृत मभयमेतत् ब्रह्मेति ।

अर्थ—(एषः) यह (यः) जो (स्वप्ने) स्वप्नमें (महीयानः) अपनी महिमा का अनुभव करता हुआ (चरति) विचरता है (एषआत्मेति) यही आत्मा है इतना कथन कर (हउवाच) फिर बोले कि (एतत्) यही (अमृतं) अमृत है (अभयं) अभय स्वरूप है (एतत्ब्रह्मेति) यही ब्रह्म है। यह गुरु उपदेश श्रवण कर वह प्रसिद्ध इन्द्र शान्त हृदय होकर चला आया परन्तु उस इन्द्र ने देवों को प्राप्त न होकर ही इस भयको देखा कि यद्यपि उस स्वप्नावस्था में यह शरीर अन्ध

होता है तथापि वह आत्मा अन्धा नहीं होता यदि यह शरीर काणा होता है तो वह आत्मा काणा नहीं होता इसके दोष से यह आत्मा कदापि दूषित नहीं होता इस शरीर के वध से काणा होने से वह आत्मा काणा नहीं होता परन्तु इस आत्मा को मानों कोई मार रहे हैं मानो कोई भगा रहे हैं यह मानो अप्रिय देखता और रोता हुआ सभी प्रतीत होता है इस विषय में भी मैं कल्याण को नहीं देखता हूं यह विचार हाथमें समिधा लेकर फिर प्रजापति के निकट आये उस को प्रजापति बोले कि हे इन्द्र !

यच्छान्त हृदय प्राव्रजी किमिच्छन् पुनरागमेति

जो आप शान्त हृदय होकर चले गये थे अब फिर किस इच्छा से आये हो वह इन्द्र बोला कि हे भगवन ! यद्यपि वह यह शरीर अन्ध होता है परन्तु वह आत्मा अनन्ध होता है यदि शरीर का कोई अङ्ग भंग होजाता है पर वह आत्मा पूर्ण होता है इस शरीर के दोष से यह आत्मा कदापि दूषित नहीं होता इसी प्रकार शरीर के बध से काणा होने से वह आत्मा काणा नहीं होता परन्तु इस आत्मा को मानो कोई मार रहे हैं मानो कोई भगा रहे हैं यह मानो अप्रिय देखता और रोता हुआ सा भी प्रतीत होता है इसमें मैं कोई फल नहीं देखता तब प्रजापति गुरु बोले कि हे इन्द्र! यह आत्मा ऐसा ही है फिर बोले कि हे इन्द्र ऐसी आत्मा का तो तेरे प्रति फिर व्याख्यान करूंगा आप ३२ वर्ष मेरे निकट और वास करें वह इन्द्र ३२ वर्ष उनके समीप और बसे तदनन्तर उससे प्रजापति बोले

तद्यत्रैतत् सुप्तः समस्तः सम्प्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्येष आत्मेति होवा चैतद् मृतमभय मेतत् ब्रह्मेति ।

(तत्) वह (एतत्) यह आत्मा (यत्र) जिस अवस्थामें (सुप्तः)

सोया हुआ (समस्तः) अपने स्वरूप में स्थित (सम्प्रसन्नः) भले प्रकार आनन्द का अनुभव करता हुआ (स्वप्नं न विजानाति) स्वप्न को नहीं जानता (एष आत्मेति) यही आत्मा है (उवाच) पुनः प्रजापति बोले (एतद् मृतम) यही अमृत (अभयं) भय रहित (एतद् ब्रह्मेति) यही ब्रह्म है यह सुन वह प्रसिद्ध इन्द्र शान्त हृदय हो चला आया। पर उसने देवताओं को प्राप्त होने से पूर्व ही इस भय को देखा कि निश्चय करके यह सुषुप्तात्मा यह मैं हूं इस प्रकार सम्प्रति अपने को नहीं जानता नाहीं इन भूतों को जानता है किन्तु विनाश को ही प्राप्त हुए की भान्ति होता है इस सिद्धान्त में भी कोई अच्छा फल नहीं देखता इस प्रकार सोच फिर लौट आया और वह हाथ में समिधा ले कर फिर प्रजापति के समीप आये उनको प्रजापति बोले कि हे इन्द्र ! जो तुम शान्त हृदय हो कर यहां से चले गये थे फिर किस इच्छा से (पुनः) आये हैं इन्द्र बोले हे भगवन् ! निश्चय करके—

अय महमस्मि एवं सम्प्रति आत्मानं नहि जानाति नो इमानि भूतानि अस्मीति।

यह मैं हूं इस प्रकार सम्प्रति अपने को नहीं जानता और नाही इन भूतों को जानता है "विनाश मेवा पीतः भवति" विनाश को ही प्राप्त होता है यह देखता हूं इसमें भी मैं कोई कल्याण नहीं देखता इस प्रकार सोच कर फिर लौट आया हूं फिर अत्यन्त निपुण सुयोग्य अपने प्रिय शिष्य इन्द्र से जगद्गुरु प्रजापति बोले कि हे इन्द्र ! यह आत्मा ऐसी ही है फिर प्रजापति ने कहा कि आप के प्रति इसका ही फिर व्याख्यान करूंगा क्यों कि इस आत्मज्ञान से भिन्न और कोई पुरुषार्थ नहीं है पांच वर्ष मेरे समीप और वास

कर वह इन्द्र ५ वर्ष और वास करता रहा यह सब मिल कर "एक शतंसंपेदुः" एक सो वर्ष हुए वह सब जो शिष्ट पुरुष हैं ऐसा ही कहते हैं कि निश्चय करके।

एकशतं वर्षाणि मघवन् प्रजापतौ ब्रह्मचर्य मुवास।

एक सो वर्ष इन्द्र ने प्रजापति के निकट ब्रह्मचर्य पूर्वक निवास किया तब उस इन्द्र से प्रजापति बोले कि।

मघवन् मर्त्यंवा इदं शरीरं नात्तं मृत्युना तदस्य मृतस्या शरीरस्यात्मनोऽधिष्टान मान्त्रो वैसः शरीर प्रिया प्रियाभ्यां नवै वस शरीरस्य सतः प्रिया प्रिययो रपहति रस्त्य शरीरं वावा सन्तं न प्रिया प्रिये स्पृशतः।

हे इन्द्र यह शरीर निश्चय करके (मर्त्यं) मरण धर्मा है, (मृत्युना आत्तं) मृत्यु से ग्रसा हुआ है जिस प्रकार बकरी का बच्चा शेर के मुख में होता है, इसी प्रकार यह शरीर मृत्यु के मुख में है (तदस्या मृतस्य)यह शरीर इस अविनाशी (अशरीरस्यात्मनोऽधिष्टानं) अशरीरी आत्मा का अधिष्टान है (वै) निश्चय करके (स शरीरात्मा प्रिया प्रियाभ्यां) प्रिय और अप्रिय से (अस्तः) ग्रसित है (वै) निश्चय करके जब तक यह (स शरीरस्य सतः) सशरीर है तब तक इसके (प्रिया प्रिययोः)प्रिय और अप्रिय का (अपहति) नाश(न अस्ति) नहीं होता (अशरीरं सन्तं) अशरीरि आत्मा को (प्रिया प्रिये) प्रिय और अप्रिय (वाव) निश्चय करके (नस्पृशतः) स्पर्श नहीं कर सकते।

अशरीरो वायुरभ्रं विद्युत् स्तनपित्नुर शरीराण्येतानि।

वायु अशरीर है,मेघ विद्युत तथा गर्जन ये सब शरीर रहित हैं।

तद्यथैतान्य मुष्मा दाकाशात्समुत्थाय परं ज्योति रूप संपद्य स्वेन रूपेणाभि निष्पद्यन्ते।

वह जैसे उस आकाश से उठ कर परम ज्योति स्व कारण को प्राप्त हो निज २ रूप से अपने कारण में स्थित होते हैं।

एवमेवैष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योति रूप संपद्यस्वेन रूपेणाभि निष्पद्यते सउत्तम पुरुषः स तत्र पर्य्येति जक्षन् पीड़न् क्रीड़न् रममाणः स्त्रीभिर्वा यानैर्वा ज्ञातिभिर्वा नोयजनं स्मरन्तिदं शरीरं स यथा प्रयोग्य आचरणे युक्त एव मेवायमस्मिन्छरीरे प्राणो युक्तः।

(एव मेव) वैसे ही (एष) यह (आत्मा) (सम्प्रसाद) सम्यक् प्रकार प्रसन्नता पूर्वक (अस्मात्शरीरात् समुत्थाय) इस शरीर से उठ कर (परं ज्योति रूप संपद्य) परं ज्योति ब्रह्म को प्राप्त हो कर (स्वेन-रूपेण) अपने निज रूप से (अभि निष्पद्यते) स्थित होता है (स उत्तमः पुरुषः) वह उत्तम पुरुष है (तत्र) उस अवस्था में (इदं शरीरं) यह शरीर (उपजनं) जिसमें यह जन्मा था (स्मरन्न) उसको स्मरण न करता हुआ (सः) वह (जक्षन) प्रसन्न होकर (स्त्रीभिः) सुन्दर स्त्रियों अर्थात् अप्सराओं के साथ (वा) अथवा (मानैः) सुन्दर विमानों के साथ (वा) अथवा (ज्ञातिभिः) सुन्दर अत्यन्त स्वरूप वन्त (ज्ञाति) अर्थात् मित्रों के साथ (क्रीड़न्) क्रीड़ा करता हुआ (रममाणः) रमण करता हुआ (पर्य्येति) सर्वत्र विचरता है (हे इन्द्र यथा आचरणे) जैसे रथ में (प्रयोग्य युक्त) घोड़ा जुड़ा हुआ होता है (एव मेव) वैसे ही (सोऽयं) वह यह (प्राण) जीव (अस्मिन् शरीरे) इस शरीर में (युक्तः) जुड़ा हुआ है तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार रथ या बग्गी को घोड़ा खींचता है इसी प्रकार इस शरीर को प्राण खींचता है।

अथ यत्रै तदाकाश मनु विषण्णं चक्षुः।

और जहां यह चक्षु आकाश में अनुगत है।

स चाक्षुषः पुरुषो दर्शनाय चक्षुः।

वह चाक्षुष पुरुष है उस पुरुष के दर्शन के लिये चक्षु है।

अथयो वेदेदं जिघ्राणीति स आत्मा।

और जो इसको संघूं यह जानता है वह आत्मा है। "गन्धाय घ्राणं" उस गन्ध के ग्रहणार्थ घ्राणेन्द्रिय है "अथ यो वेदेद मभी व्याहराणीति स आत्मा" और जो इस को बोलूं यह जानता है वह आत्मा है "अभि व्याहाराय वाक्" उसके भाषणार्थ वागिन्द्रिय होता है "अथ यो वेदेदं श्रणवानीति स आत्मा" और जो इसको श्रवण करूं यह जानता है वह आत्मा है "श्रवणाय श्रोत्रं" उस आत्मा के सुनने के लिये श्रोत्र हैं, "अथ यो वेदेदं मन्वानीति स आत्मा" और जो इसका मनन करूं यह जानता है वह आत्मा है "मनोऽस्य दैवं चक्षुः" इस आत्मा का मन ही दिव्य चक्षु है।

सवा एषएतेन दैवेन चक्षुषा मन सैतान् कामान् पश्यन् रमते

वह यह आत्मा इस दिव्यचक्षु रूप मन से ही इन कामनाओं को देखता हुआ रमण करता है,

यः एते ब्रह्मलोके तंवा एतं देवा आत्मान मुपासते।

जो यह देवता लोग निश्चय करके उस ब्रह्म लोक में आत्मा परमात्मा की उपसना करते हैं।

तस्मात्तेषा ँसर्वेच लोकाआत्ताः सर्वेच कामाः

इसी कारण उन देवों को सब लोक और सब कामनायें प्राप्त होती हैं, "स सर्वा ँ श्चलोका नाप्नोति" वह सब लोक लोकान्तरों को पा लेता है, "सर्वा ँ श्चकामान्" और सब कामनाओं को प्राप्त होता है, "यस्त मात्मान मनुविद्य विजानाति" जो उस आत्मा

को खोजकर जानता है, "प्रजापतिरुवाच" यह प्रजापति ने उपदेश किया तदनन्तर आत्मज्ञानी प्रसन्नचित्त होकर इन्द्र कथन करता है

श्यामाच्छवलं प्रपद्ये शवलाच्छ्यामंप्रपद्ये अश्व यव रोमाणि विधूय पापं चन्द्रइव राहो मुखात् प्रमुच्य धूत्वा शरीरमकृतं कृतात्मा ब्रह्मलोकमभि सम्भवामीत्यभि सम्भवामीति ।

(श्याम) अर्थात् हार्द ब्रह्म से (शवलं) अर्थात् शवल विराट् ब्रह्मको (प्रपद्ये) प्राप्त होता हूं और (शवलात्) उपाधि विशिष्ट शवल ब्रह्म से (श्यामं) शुद्ध ब्रह्म को (प्रपद्ये) प्राप्त होता हूं (अश्वइव रोमाणि) जैसे घोड़ा अपने रोमोंको कम्पायमान कर अर्थात् झाड़कर निर्मल होजाता है और (राहु मुखात् इव) जैसे राहु अर्थात् पृथ्वी की आड़ से (प्रमुच्य) मुक्त होकर चन्द्रमा चमकता है अर्थात निर्मल होजाता है इसी प्रकार (पापं विधूय) पापों से पृथक् होकर अर्थात पापको छोड़ कर (कृतात्मा) कृतार्थ हुआ (शरीरं धूत्वा) शरीर को त्याग कर (अकृतं) क्रिया रहित नित्य (ब्रह्मलोकं) ब्रह्म लोक को (अभि सम्भवामीति) सर्वात्मा होकर प्राप्त होता हूं और भी कहा है

आकाशो वै नाम, नामरूपयो निर्वहिता ते इदंतरा तद्ब्रह्म तद्मृत्तं सआत्मा प्रजापतेः सभां वेश्म प्रपद्ये यशोऽहंभवामि ब्राह्मणानांयशो राज्ञांयशो विशांयशो हमनु प्रापत्सि सहाहं यशसां यशः श्येत् मदत्कः मदत्कं श्येतं लिन्दुमाभिगां लिन्दुमाभिगाम् ॥

(वै) निश्चय करके आकाश नाम ब्रह्म ही, (नाम रूपयोः) नाम और रूप का (निर्वहिता) निर्वाहक अर्थात् प्रकाशक है, (ते) वे नाम रूप (इदंतरा) जिसके मध्य में वर्तमान हैं (तद्ब्रह्म) वह ब्रह्म है

(तत् अमृतं) वह अमृत है (स आत्मा) वही आत्मा सबका अपना आप वही आत्मा ब्रह्म सर्व व्यापक है (अहं) मैं (प्रजापतेः) उस प्रजापति के (सभां) सभा को अर्थात् शरण को (वेश्म प्रपद्ये) प्राप्त होकर अपने परमानन्द स्वरूप को प्राप्त हो जाऊं (यशः अहंभवामि) मैं सब का यश हो जाऊं अथवा मैं यशस्वी होऊं (ब्राह्मणानां यशः) ब्राह्मणों के मध्य यश को (राज्ञांयशः) राजाओं के यश को (विशां-यशः) वैश्यों में यश को (अनुप्रापत्सि) प्राप्त होऊं (सह अहं) वह प्रसिद्ध मैं (यशशां यशः) यशस्वियों के बीच यशस्वी हो जाऊं हे भगवन् (श्वेतं) स्वेत रक्त (अदत्कं) दन्त रहित अर्थात् यश बल बीर्य का नाश करने वाला (श्येतंलिन्दु) रक्तयोनिको (माभिगां) प्राप्त न होऊं प्राप्त न होऊ दोबार पाठ उक्तर्थ की दृढ़ता के लिये है ॥ इस ज्ञान को पूर्व में ब्रह्मा ने प्रजापति को कथन किया और प्रजापति ने मनु को मनु ने प्रजाओं को यह उपदेश किया कि—

आचार्य कुलात् यथा विधानं वेद मधीत्य

आचार्यकुल से विधि पूर्वक वेद का अध्ययन कर।

गुरो अतिशेषेण कर्मभिः समावृत्य,

गुरु की अतिशय सुश्रुषा कर अपने कुटुम्ब में अथवा पवित्र देश में स्वाध्याय करता हुआ अन्य मनुष्यों को धार्मिक बनाता हुआ,

आत्मनि सर्वेन्द्रियाणि संप्रतिष्ठाप्य,

आत्मा में सब इन्द्रियों को स्थिर करके

अहिंसन् सर्व भूतानि अन्यत्र तीर्थेभ्यः

तीर्थों से अन्यत्र भी सर्व प्राणियों की हिंसा न करता हुआ जो विचरता है

सखल्वेवं वर्तयन् यावदायुषं ब्रह्मलोक मभि संपद्यते नच पुनरावते

निश्चय करके इस प्रकार से आयु पर्यन्त वर्तता हुआ ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है फिर उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती। इत्यादि विचारों से यही विस्पष्ट ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण वेदोपनिषद द्वारा एक आत्मा का ही निर्देष किया गया है परन्तु अपार सुख स्वरूप परमेश्वर से अतिरिक्त इस आत्मज्ञान का प्रदाता कोई नहीं है और वही आत्मिक बल के देने वाला है सर्व विश्व सुषुप्ति अवस्था में उसके समीप पहुंचता है सब इन्द्रियें उसी में प्रशंसनीय होती हैं जिसकी शरण में जाना अनन्य भक्ति द्वारा सब कुछ उसी को समझना उसके विना देखना सुनना छूना संघना कुछ भी नहीं है "अयमात्मा सर्वेषां भूतानां लोकः" यही परमात्मा सब भूतों का प्रकाशक अर्थात सामर्थ्य देने वाला है इस का ज्यों का त्यों ही जानना मोक्ष है अन्यथा जीव मृत्यु को प्राप्त होता है इन्द्र ने श्रवण मनन निदिध्यासन द्वारा आत्मा को साक्षात्कार कर लिया सो तो अमर हो गया। और विरोचन ने गुरु उपदेश को श्रवण तो किया परन्तु इन्द्रियों को निरोध कर मनन और निदिध्यासन न करता हुआ अपने अनुयायियों सहित मृत्यु को प्राप्त होता रहा यही उपदेश याज्ञवल्क्य जी ने सन्यास आश्रम में जाने लगे तब उन्होंने मैत्रेयी को कहा हे मैत्रेयी मैं इस ग्रहस्थाश्रम को छोड़ कर सन्यास धारण करना चाहता हूं इस लिये मेरा विचार है कि मैं सम्पूर्ण धन को तुझे और कात्यायनी को दे जाऊं, "साहोवाच मैत्रेयी" यह मैत्रेयी ने कहा कि—

यत्र इय भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णास्यात

हे भगवान् यदि सम्पूर्ण पृथिवी धन से पूर्ण हो तो "कथंते

नामृता स्यामिति" तो क्या मैं उससे अमृत मोक्ष लाभ कर सक्ती हूं' "नेति हो वाच याज्ञवल्क्य" याज्ञवल्क्य ने कहा नहीं ।

यथैवोपकरणवंता जीवितं तथैवते जीवितं स्यात् ।

जिस प्रकार प्राकृतक पुरुषों का जीवन होता है उसी प्रकार तेरा हो धन से मोक्ष की इच्छा न कर मैत्रेयी बोली "येनाहंनामृतास्यां किमहं तेन कुर्यां" जिससे मैं अमृत को प्राप्त नहीं हो सक्ती उस धन से मेरा क्या प्रयोजन ।

यदेव भगवन वेद तदेवमे ब्रूहि

जो आप जानते हैं सो मेरे प्रति कहें याज्ञवल्क्य बोला कि तू मुझे वास्तव में प्रिय है क्योंकि प्रिय कथन करती है अब ध्यान पूर्वक मेरे कथन को सुन ।

सहोवाच नवाअरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पति प्रियो भवति ॥

याज्ञवल्क्य बोले कि हे मैत्रेयि पति की कामना के लिये पति प्रिय नहीं किन्तु आत्मा की कामना के लिये पति प्रिय होता है ।

नवा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति ॥

भाषा—स्त्री की कामना के लिये स्त्री प्रिय नहीं होती किन्तु आत्मा की कामना के लिये स्त्री प्रिय होती है ।

नवा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राःप्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवति ॥

भाषार्थ—पुत्र की कामना के लिये पुत्र प्यारे नहीं, किन्तु आत्मा के लिये पुत्र प्यारे हैं ।

जो फल थे तन मानव के वह लाभ किये हमने अब सारे।
आनन्द ब्रह्म सुधा निधि को लख दूर भये भव के भय भारे॥
क्षुद्र नदी सम मेट दिया वपु ब्रह्म पयोनिधि माह पधारे।
प्रत्यक् रूप भई ममता यह पुत्र वधू अब नाह हमारे॥
सुत के हित प्यार करे जग में कहो कौन करे धनके हित प्यारा।
हित नार न प्यार करे जग में इम ढूंढ लिया हमने भव सारा॥
हित आतम प्यार करें सबही यह आतम है सब से अति प्यारा।
वह आनन्द रूप पयोनिधि है उस के बिन और नहीं कोऊ प्यारा॥
बसु पूरण हो वसुधा सगरी पुन और पदारथ हो सुखकारी।
गजगामिनी भामिनी हो मधुरा मुखकी छविचन्द्रकला जिनटारी॥
शुभ व्यञ्जन होहिं अहार घने जिनके रस से तन पुष्टि अपारी।
सुख आतम नाह लहें जब ही तब होंहीं हलाहल के समचारी॥
वह आनन्द नाह मिले धन से और नाह मिले वह त्याग कमाये।
तन तीरथ त्याग करे न मिले न मिले हरि के पुर देह तपाये॥
घन कानन घोर निवास करे अथवा गिरि कन्दर मांह बसाये।
रति आतम एक सुधाधन है पर जो रति नाह सुनाह सनाये॥

गज़ल सोहनी

प्रीत न की स्वरूप से तो क्या किया कुछ भी नहीं।
जान दिलवर को न दी फिर क्या दिया कुछ भी नहीं॥
मुल्कगीरी में सिकन्दर से हज़ारों मर मिटे।
अपने पर कब्जा न किया क्या लिया कुछ भी नहीं॥
देवताओं ने सोम रस पिया तो फिर भी क्या हुआ।
प्रेम रस गर नाह पिया तो क्या पिया कुछ भी नहीं॥
हिज्र में दिलवरके हम जो उम्र पाई खिजर की।
यार अपना नाह मिला तो क्या किया कुछ भी नहीं॥

खयाल

धन २ भोला नाथ तुम्हारे कौडी नहीं ख़जाने में ।
तीन लोक बस्ती में बसाये आप बसे वीराने में ॥ टे०
जटा जूट् का मुकट शीश पर गले में मुण्डों की माला ।
माथे पर फूटा सा चन्द्रमा कपाल का करमें प्याला ॥
जिसे देख के भय व्यापे सो गले बीच लपटा काला ।
और तीसरे नेत्र में तुम्हारे महा प्रलय की है ज्वाला ॥
पीने को हर वक्त भंग और आक धतूरा खाने में ॥१॥
चर्म शेर का वस्त्र पुराना बूढा बैल सवारी को ।
तिस पर तुमरी सेवा करती धन २ गौर विचारी को,
वो तो राजा की पुत्री व्याही गई भिखारी को ।
क्या जाने क्या देखा उसने नाथ तेरी सरदारी को ॥
सुनी तुम्हारे व्याह की लीला भिखमंगों के गाने में ॥२॥
नाम तुम्हारे अनेक हैं पर सब से उत्तम है नंगा ।
याहि ते शोभा पाई जो विराजती सिर पर गंगा ॥
भूत प्रेत बेताल साथ में लश्कर है सब से चंगा ।
तीन लोक के दाता होकर आप बनो क्यों भिखमंगा ।
अलख मुझे बतलाओ मिले क्या तुमको अलख जगाने में ॥३॥
ये तो सर्गुण को स्वरूप हैं निर्गुण में निर्गुण हो आप ।
पल में प्रलय करो छिन में रचना तुम्हें नहीं कुछ पुण्य न पाप ॥
किसी का सुमरन ध्यान न तुम को अपना ही करते हो जाप ।
अपने बीच में आप समाये आपी आप में रहे हो व्याप ।
हुआ मेरा मन मगन ये सिठनी ऐसी नाथ बनाने में ॥४॥
कुबेर को धन दिया और तुम ने दिया इन्द्र को इन्द्रासन ।
अपने तन पर ख़ाक रमाई नागों का पहने भूषण ॥

मुक्ति मुक्ति के दाता हो मुक्ति भी तुम्हरे गहे चरन ॥
देविसिंह कहै दास तुम्हारा हित चित से नित करे भजन ।
बनारसी को सब कुछ बक्शा अपनी जबां हिलाने में ॥५॥

भजन

काया नगर गुलज़ार कुंजी ला देखो भाई ।
शिव की पुरी ब्रह्म का बासा विष्णु बैकुण्ठ रचाई ॥ टेक
जगन्नाथ और मक्का मदीना याही महल के माहीं,
नौसो नाड़ी बहत्तर कोठा लगे महल के माहीं ॥१॥
नौ दरवाज़े प्रकट दीखें दसवें गुप्त लगाई,
जैसे तार मकड़िया छोड़े उसी तार चढ़ जाई ॥२॥
जब लागे तेरी सुरत गगन में दरवाजा दिखलाई,
नौसो नदी नवासी नाले सात समन्द्र ताई ॥३॥
खोल किवड़िया चढ़े गगन में तीन लोक दर्शाई,
गङ्गारे यमुना मध्य सरस्वती तिरवेणी है याहीं ॥४॥
अपने गुरु से ताली ले कर छिन में मुक्ति पाई,
ब्रह्मदत्त पर कृपा कीनी सत्गुरु नाम सहाई,
एक महल में ऐसा देखा शोभा वरणी न जाई ॥५॥

"पिण्डेपु ब्रह्माण्डे" पातालादि सब लोक पर्वत सूर्यादि ग्रह और नागादि पैरों के अधः भाग में अतल, उस के ऊपर वितल, जानुओं में सुतल, और जानुओं की सन्धियों में तल, और गुल्फ स्थान में तलातल, और लिङ्ग मूल में रसातल, और पृष्ट सन्धियों में पाताल नाभि में भुर्लोक, हृदय में भुवर्लोक, और कण्ठ में स्वर्गलोक और नेत्रों में महर्लोक और नेत्रों के ऊपर भाग में जन लोक और ललाट में तपलोक और मस्तक में सत्य लोक इस प्रकार १४ भुवन विद्यमान हैं त्रिकोणाकार देह के मध्य में मेरु पर्वत स्थित है और रुद्र लोक

में मन्दिराचल दायें पार्श्व में कैलाश और बायें में हिमालय उस के ऊर्ध्व भाग में विन्ध्याचल और विष्णु पर्वत, ये सात पर्वत स्थित हैं इसी में जम्बू द्वीप है, तथा मांस में कुश द्वीप नाड़ियों में क्रौञ्च द्वीपरक्त में शाक द्वीप सम्पूर्ण सन्धियों में शाल्मली, रोमो में पलक्ष द्वीप और नाभि में पुष्कर द्वीप स्थित है इसी प्रकार ७ समुद्र भी मूत्र में लवण, शुक्र में क्षीर और मज्जा में दधि और चर्म में घृत, रस में जल द्वीप, रक्त में ईक्षु समुद्र, और शोणित में सुरा समुद्र, इसी प्रकार ग्रहों की स्थिति शरीर में नाद चक्र में सूर्य, विन्दु चक्र में चन्द्रमा, नेत्रों में मङ्गल, हृदय में बुध, और उदर में बृहस्पति, शुक्र में शुक्र, नाभि में शनि, मुख में राहु, और पैरों में केतु।

आरती

जय शिव ओंकारा प्रभु भज शिव ओंकारा।
ब्रह्माविष्णु सदाशिव अर्द्धांगी धारा ॥१॥ ओंहर ३ महादेव
एकानन चतुरानन पंचानन राजै, शिव पंचानन राजै।
हंसासन गरुडासन वृषवाहन साजै ॥ ओंहर ३ ॥ २ ॥
दोयभुज चारचतुर्भुज दशभुज ते सोहै, शिवदशभुजते सोहै।
तीनों रूप निरखता त्रिभुवन जन मोहै ॥ ओंहर ३ ॥ ३ ॥
अक्षमाला वनमाला रुंडमाला धारी, शिव रुंडमालाधारी।
चन्दन मृगमद लेपन भाले शुभकारी ॥ ओंहर ३ ॥४॥
श्वेतांबर पीतांबर बाघांबर अंगे, शिव बाघांबर अंगे।
सनकादिक प्रभुतादिक भूतादिक संगे ॥ ओंहर३ ॥५॥
करमध्येहि कमण्डलु चक्रत्रिशूलधर्ता, शिवचक्रत्रिशूलधर्ता।
युगकर्ता युगभर्ता युगपालन कर्ता ॥ ओंहर ३ ॥ ६ ॥

लक्ष्मी वर सावित्री पार्वती अंगे, शिव पार्वती अंगे ।
अर्द्धांगी गायत्री शिवगौरी संगे ॥ ओंहर ३ ॥ ७ ॥
ब्रह्माविष्णुसदाशिव जानत अविवेका, शिवजानत अविवेका ।
प्रणवाक्षर दोऊ मध्ये ये तीनों एका ॥ ओंहर३ ॥ ८ ॥
काशी में विश्वनाथ विराजत नन्दा ब्रह्मचारी, शिव० ।
नित्य प्रति दर्शन पावत महिमा अति भारी ॥ ओंहर ३ ॥९॥
त्रिगुणस्वामीकी आरती जो कोई नरगावै, शिवजोमनसेगावै ।
भणत शिवानन्द स्वामी, सुख सम्पति पावै ॥ओंहर३ ॥१०॥
ॐ जय शिव ओंकारा प्रभु भज शिव ॐकारा ।
वो शिव शिर पर जलधारा वो शिव भूरी जटा वाला ॥
वो शिव भस्म रमनपाला वो शिव ओढत मृगछाला ।
वो शिव भांग पिवनवाला वो शिव भक्तन प्रतिपाला ॥
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव अर्द्धांगी धारा ॐहर३ महादेव ॥११

इस काम के क्षय और वश करने के लिये कामऋषु शिवशंकर की शरण में जाना पड़ता है। क्योंकि वही निवृति मार्ग के नेता हैं उनके मस्तक पर द्वितीया का चन्द्रमा यह सूचित करता है कि अब अन्धकार मय पक्ष नष्ट हुई, आओ दोजका चान्द देखो इसी प्रकार परमेश्वर की ओर बढो जिस प्रकार औपधेश्वर क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होता है ऊपर चढ़ने में कठिनताओं के कारण मन्द गति होती है, इसी लिये मन्द गति करने वाला इनका वाहन बैल है, यह नन्दी गण मृत्यु के मुख से विरूपाक्ष ने प्रमोचन किया जब से इनको प्रत्येक स्थान पर वाहन का कार्य देने लगा और प्रवाहक शक्तियों में कृतकार्यता लाभ की ।

शिव मानस पूजा

रत्नैः कल्पित मासनं हिमजलैः स्नानं चदिव्यांबरं।
नाना रत्न विभूषितं मृगमदामोदांकितं चन्दनम् ।
जातीचंपक बिल्वपत्र रचितं पुष्पं च धूपं तथा ।
दीपं देव दयानिधे पशुपते हृत्कल्पितं गृह्यताम् ॥
सौवर्णे मणि खंड रत्नरचिते पात्रे घृतं पायसं ।
भक्ष्यं पंचविधं पयोदधियुतं रंभाफलं फोणितम् ॥
शाकानामयुतं जलं रुचिकरं कर्पूर खंडोज्ज्वलं ।
तांबूलं मनसा मया विरचितं भक्त्या प्रभो स्वीकुरु ॥
छत्रं चामरयोर्युगं व्यंजनकं चार्दशकं निर्मलम् ।
वीणा भेरिमृदंगकाहल कलागीतं च नृत्यं तथा ॥
साष्टांग प्रणतिः स्तुतिर्बहु विधाह्येतत्समस्तं मया ।
संकल्पेन समर्पितं तव विभो पूजां गृहाण प्रभो ॥
आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं ।
पूजाते विषयोपभोग रचना निद्रा समाधिस्थितिः ॥
संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वागिरो ॥
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शंभो तवाराधनम् ।
इत्येवं हरपूजने प्रतिदिनं योवा त्रिसंध्यं पठेत् ॥
सेवा श्लोकचतुष्टयं प्रतिदिनं पूजा हरे मानसी ॥

सोऽयं सौख्य मवाप्नुयाद्द्युति धरं साक्षाद्धरेर्दर्शनं ।
व्यासस्तेन महावसान समये कैलास लोकं गतः ॥
करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा श्रवण नयनजं वा
मानसं वा पराधम् ॥ विहितमविहितं वा सर्वमेत-
त्क्षमस्व जय जय करुणाब्धे श्री महादेव शंभो ॥६॥

युक्तिः—

जोगी जोग जुगति सोइ जाने ॥
सोई गृही जो गृह में बसके, श्याम चरण रति माने ॥
काम क्रोध मद लोभ मोह की पञ्चाग्नी न गलाने ॥
गत तृष्णा सन्तोष तोष मन भलो बुरो पहचाने ॥
धरि धीरज सुख दुःख सब भोगे लीन न होय भुलाने ॥
हिंसा तजि उपकार परायो, करत न आलस माने ॥
अमर होय नामामृत पीवे बुद्धि बुद्धि रस साने ।
लीला ललित लखे बल्लभ की, राखे चित्त ठिकाने ॥

ग्रहीयोगः—

ग्रह हरी भजन भजन अति नीको ॥
दरदर फिर फिर भीखन मांगी, कहां समझाइवो जीको ।
आनन्द मग्न रहो निश वासर मनसा जाप हि सीखो ॥
प्रेम पयोनिधि को पय पीवो जुग जीवो जोग जती को ॥
बल्लभ ललित त्रिभंग श्याम कर, अञ्जन चख पुतरी को ।
दृढ़ गहि चरण शरण ह्वै रहिये, यही मतो जोगी को ॥

अन्तिम प्रार्थना

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् ।
आराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्यो ऽतिव्याधि महारथो जायताम् ।
दोग्ध्री धेनु र्वोढा नड्वा नाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णु रथेष्ठाः
संभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम् ।
निकामे निकामे पर्जन्यो वर्षतु ।
फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम् ।
योगः क्षेमो नः कल्पताम् ॥

हिन्दी—जगदीश ब्रह्म प्रभु जी सुनिये विनय हमारी ॥
हों विप्र पैदा जग में निज कर्म धर्म धारी ।
रणधीर क्षत्रि होवें अधिकारी वेद धारी ॥१॥
दें गउवें दूध अधिकं हो बैल बल के धारी ।
गति तेज होवें घोड़े, स्त्री गुण वो रूप वारी ॥२॥
जब जग करे ये इच्छा वर्षावे मेघ अमृत ।
फल सुख के दाई सब ही, हों योग क्षेम कारी ॥३॥
रघुनाथ है ये विन्ती हृदये सभी लगावें ।
ये वेद की है आज्ञा निज शीश इन पै वारी ॥४॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

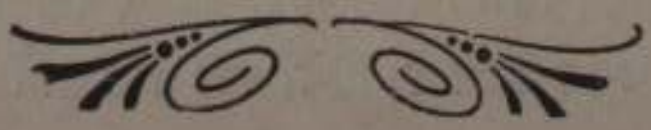

रामस्वरूप

ी जायताम्।
जिष्णु रथेष्ठाः

॥

॥२॥

॥३॥

॥४॥

संस्थापित सन् १९११

श्री राम कृष्ण स्वामी पुस्तकालय

नरेला, सूबा देहली।

प्रिय सज्जनो !

यह संस्था आज २८ वर्ष से भक्ति ग्रन्थों के वितरण द्वारा देश सेवा का कार्य कर रही है जिस के प्रमाण रूप से देश के मान्य सज्जन पत्र व पत्रिकायें हैं जिन पत्रों के ये नाम हैं—

(१) श्री वेङ्कटेश्वर समाचार बम्बई।
(२) दैनिक भारतमित्र कलकत्ता।
(३) साप्ताहिक अर्जुन दिल्ली।
(४) वैभव देहली।
(५) आभीर समाचार उरावर मैनपुरी।
(६) भक्ति पत्र रेवाड़ी आदि २ हैं और सहायक भी बहुत से सज्जन हैं जिन्हों ने अनेक धार्मिक पुस्तकें अमूल्य भी वितरण कराई हैं। अब तक उक्त पुस्तकालय के पास कोई निजी स्थान नहीं है उस के लिये उदार दाताओं से निवेदन है कि यह आप की इतनी प्राचीन संस्था है इस के स्थान निर्माण के लिये कुछ अपने अमूल्य दान के द्वारा अपने द्रव्य की शुद्धि कर परम कल्याण के भागी बनें

पुस्तकालय से ये पुस्तक ।।) डाक व्यय भेजने पर प्राप्त हो सकती हैं—

भक्ति मार्ग, ओङ्कार व्याख्या, गायत्री भाष्य, गणेश वर्णन, मुण्डकोपनिषद्, सत्योपदेश भजनमाला, द्विजकर्तव्य, सत्यशब्द संग्रह

निवेदक—श्री जनार्दन शर्म्मा ब्रह्मचारी, पुस्तकालयाध्यक्ष,
नरेला, सूबा देहली।